प्रकाशक
सरस्वती पुस्तक सदन,
मोतीकटरा, आगरा

प्रथमावृत्ति १००० { संवत् २०१० } सन् १९५३

मुद्रक
राकेशचन्द्र उपाध्याय,
आगरा पॉपूलर प्रेस, आगरा

# विषय-सूची



---

# भूमिका

हिन्दी महाकाव्यों पर स्वतन्त्र रूप से यह प्रथम पुस्तक है। विद्यार्थियों के हित को दृष्टि में रखते हुए इसमें हिन्दी महाकाव्यों का संक्षिप्त आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है। हर्ष का विषय है महाकाव्य-निर्माण आधुनिक हिन्दी में प्रचुरता से हो रहा है। अनेक कवियों की दृष्टि इस साहित्यिक माध्यम की ओर जा रही है। नवीन हिन्दी महाकाव्यों में अनेक महाकाव्य भावों की विशदता, प्रसाद गुण के आधिक्य और युग के प्रतिबिम्ब की दृष्टि से सफल रहे हैं। नवीनतम महाकाव्य हमारे कवियों की मौलिक प्रतिभा एवं सजीवता के परिचायक हैं। इस वैज्ञानिक युग में भी महाकाव्य अपनी सरसता से बुद्धिवाद की शुष्कता दूर कर रहे हैं।

रूढ़िवादी लक्षणों के स्थानों पर हमारे नए कवियों ने विषय, भाव, विचार, नायक, छन्द, एवं वर्णनों के नए आदर्श अपनाये हैं। प्राचीन लक्षण ढीले पड़ गए हैं। भावानुकूल भाषा को भी सरल बोधगम्य बनाने की ओर प्रकृति है। कुछ महाकाव्यों में भारत के राष्ट्रीय-एवं सांस्कृतिक पक्षों को बल दिया गया है और भारतीय जीवन दर्शन को उभारा गया है। पौराणिक नायकों के स्थान पर साधारण वर्ग के महापुरुषों को लेकर भी महाकाव्य लिखे जा रहे हैं। श्री विष्णुदत्त मिश्र "तरंगी" का "जय-काश्मीर"; श्री रघुवीरशरण मित्र का "जननायक"; श्री सोहनलाल द्विवेदी कृत "कुणाल"; परमेश्वर द्विरेफ कृत "मीरा"; रुद्रका "वाल्मीकि"; श्री व्रजकिशोर नारायण कृत "अनारकली" इत्यादि महाकाव्य जनवादी विचारधारा के प्रतीक हैं। महाकाव्यों का क्षेत्र पर्य्याप्त व्यापक हो गया है और नए-नए प्रयोग किए जा रहे हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में मैंने सभी उपलब्ध सामग्री का उपयोग किया है। जिन आलोचकों के विचारों और ग्रन्थों से सहायता ली गई है, उनके ग्रन्थों का निर्देश फुटनोट या अन्त में दे दिया गया है जिससे विद्यार्थी उन सभी

पुस्तकों का गहन अध्ययन कर सकें। महाकाव्य विषय बड़ा विस्तृत है। प्रत्येक महाकाव्य के सौंदर्य तथा विशेषताओं पर एक-एक पृथक आलोचनात्मक पुस्तक लिखी जा सकती है। साकेत, कामायनी, कुरुक्षेत्र इत्यादि पर हिन्दी में बहुत कुछ लिखा गया है। विद्यार्थियों को इन सभी पुस्तकों को पढ़ कर इस ज्ञान को बढ़ाना चाहिए। सार रूप में प्रस्तुत ग्रन्थ लाभदायक सिद्ध होगा। जिन विद्वानों की पुस्तकों तथा विचारों से सहायता ली गई है, उनके प्रति हम आभार प्रदर्शन करते हैं।

हरबर्ट कालेज कोटा,
राजस्थान

प्रो० रामचरण महेन्द्र एम० ए०

प्रथम खण्ड

# हिन्दी महाकाव्य और महाकाव्यकार

**महाकाव्य का महत्त्व:—**

साहित्य मानव जीवन एवं समाज का प्रतिबिम्ब है। मनुष्य के जीवन तथा समाज में नाना प्रकार की मूल तथा गौण समस्याएँ हैं, जिनके चित्रण के हेतु साहित्यकार को छोटे बड़े साहित्यिक माध्यमों को अपनाना पड़ता है। संक्षिप्त काव्य माध्यमों—गीत, गद्यगीत, या खण्ड काव्य—में एक मूल भाव को विस्तार से विकसित कर प्रकट कर दिया जाता है। छोटे-छोटे गीत या गद्यकाव्यों में एक विशेष भाव की कलात्मक अभिव्यक्ति होती है, किन्तु बड़े माध्यमों के वृहदाकार में जीवन एवं समाज का विवेचन विस्तार पूर्ण होता है। बड़े माध्यम अपेक्षाकृत अधिक व्यापक, सर्वांगीण, और गहरे होते हैं। उनमें समस्त मानवता, समाज, प्रकृति, संस्कृति चरित्र के विविध स्तर अपनी समस्त गहराई में चित्रित किए जाते हैं।

आकार एवं विस्तार की दृष्टि से उपन्यास, नाटक, तथा महाकाव्य तीनों एक ही वर्ग के साहित्यिक माध्यम हैं। ये जीवन का अधिक विस्तार लिए हुए हैं। इन तीनों की विस्तृत परिधि में मानव जीवन तथा उससे सम्बन्धित विविध वैयक्तिक, सामाजिक एवं धार्मिक समस्याओं की सर्वांगीण विस्तृत व्याख्या रहती है। इन तीनों साहित्यिक माध्यमों के द्वारा लेखक सविस्तार गहराई से मानव चरित्र एवं समाज, जीवन के विविध-पक्ष, नाना ऊँची-नीची दशाओं और समुन्नत एवं गिरी हुई अवस्थाओं का चित्रण करता है। प्रमुख नायक के साथ सम्बन्धित गौण पात्रों के चरित्रों का भी विश्लेषण रहता है। उपन्यास में लेखक को स्वयं अपनी ओर से टीका टिप्पणी करने की विशेष स्वच्छन्दता रहती है; नाटक में

पात्र स्वयं अपने अभिनय द्वारा आन्तरिक स्थितियों का प्रदर्शन करते हैं। महाकाव्य में जीवन की यह समग्रता प्रधान पात्र के सम्पूर्ण जीवन की व्याख्या तथा उसके सम्पर्क में आने वाले अन्य गौण चरित्रों के चित्रण से की जाती है। इन तीनों माध्यमों का जीवन क्षेत्र विस्तृत है। इनका चित्र-पट इतना लम्बा चौड़ा है कि लेखक अनेक गौण समस्याओं में भी उलझा रह सकता है। प्रसंगवश मानव-जीवन की सामाजिक धार्मिक एवं प्राकृतिक पृष्ठभूमि का भी विस्तृत चित्रण इनमें प्रस्तुत किया जाता है। उपन्यास एवं नाटक जिस प्रकार सविस्तार बृहदाकार में मानव जीवन तथा समाज की समस्याओं का श्रृंखलाबद्ध चित्रण करते, चरित्रों के निगूढ़तम रहस्यों का उद्घाटन करते, प्रकृति का वर्णन करते और क्रियाकलाप संघर्षों इत्यादि का उल्लेख करते हैं, उसी प्रकार महाकाव्य विस्तृत परिधि के अन्तराल में रसात्मक काव्य रूप में मानव-जीवन और समाज का आन्तरिक एवं वाह्य विश्लेषण प्रस्तुत करते हैं। तीनों में मानव जीवन की अनेक रूपता, समस्याओं एवं परिस्थितियों की विविधता, प्रकृति की नाना दशाओं का वर्णन, रसों का अभिनव सम्मिश्रण और वस्तु का विस्तार दृष्टिगोचर होता है। ये समग्र मानव जीवन के सर्वाङ्गीण चित्र हैं।

## महाकाव्य का स्वरूप :—

महाकाव्य वह विस्तृत प्रबन्धकाव्य है, जिसमें कवि विस्तार से मानव जीवन की सर्वाङ्गीण व्याख्या करता है। विस्तृत जीवन के विवेचन के लिए केन्द्र विन्दु के रूप में एक प्रमुख पात्र लेकर तत्सम्बन्धित कथानक का निर्माण किया जाता है। विवेचन में कथा के प्रवाह-सूत्र तथा नाना छोटी बड़ी श्रृंखलाओं के निबन्धन का विशेष ध्यान रखा जाता है।

महाकाव्यकार किसी प्रतिष्ठित ऐतिहासिक-धार्मिक या सांस्कृतिक महत्त्व के महापुरुष सम्बन्धी कथानक के सहारे सम्पूर्ण मानव समाज, रीति नीति, देशकाल परिस्थिति को विस्तार से प्रतिविम्बित करता है। उसके चित्रण में जीवन की अनेक रूपता विद्यमान रहती है। यों तो महाकाव्य में प्रकथन, विवरण या वर्णन ( Narration ) की प्रधानता होती है,

किन्तु यत्र-तत्र काव्य सौष्ठव और प्रगीत काव्य का भी सम्मिश्रण होता है। विस्तृत परिधि होने के कारण महाकाव्यकार को समाज और घटनाओं के चित्रण और मानव चरित्र के सब पहलुओं पर पर्याप्त प्रकाश डालने, जीवन की गहराइयों में उतरने, रहस्यों को खोलने और मानवता को व्यापक प्रेरणा देने वाले एक स्वस्थ सन्देश को उभारने की पूर्ण स्वतन्त्रता रहती है।

महाकाव्य के टेकनीक में वस्तु वर्णन तथा चरित्र चित्रण का विशेष महत्त्व है। महाकाव्यकार की वर्णन शक्ति इतनी विकसित हो कि वह मानव तथा समाज के भीतर बाहर की अनेक घटनाओं भावात्मक प्रसंगों, महत्वपूर्ण उपकथाओं का वृहद् रसात्मक वर्णन कर सके; नाना कार्य व्यापारों, कथोपकथन और जीवन दशाओं को एक सूत्र में पिरो सके। कवि दृष्टि पात्रों के अन्तर्जगत् में होने वाले सूक्ष्म विचारों और मानसिक दशाओं का बोध कराने में समर्थ हो।

## महाकाव्य युग काव्य होते हैं—

महाकाव्य युग की सामाजिक, नैतिक, आर्थिक, राजनैतिक विचार-धारा के वाहक होते हैं। प्रत्येक युग दूसरे युग से पृथक् होता है; परिस्थितिएँ एवं वातावरण निरन्तर परिवर्तित होते जाते हैं। जो आदर्श वैदिक काल में थे, वे बाद में बदले; मुसलमानों के युग में हमारे आदर्श कुछ और परिवर्तित हुए; अंग्रेज़ों के आगमन ने नई परिस्थितिएँ उत्पन्न की और स्वतन्त्रता के पश्चात् आज हम एक नए ही युग में साँस ले रहे हैं। युग परिवर्तनों की छाया महाकाव्यों पर पड़ती रही है। रामायण एवं महाभारत में चित्रित परिस्थितियों का प्रभाव मुस्लिमयुग एवं गाँधी-युग के महाकाव्यों पर नहीं है। प्रत्येक युग की संस्कृति एवं विचारधारा को ले लेकर महाकाव्यों की रचना होती रही है। महाकाव्य युग की विचार-धारा और प्रवृत्तियों के चित्र होते हैं।

## जातीय संस्कृति के प्रतिनिधि :—

कुछ आलोचकों का विचार है: महाकाव्य हमारी जातीय संस्कृति

के प्रतिनिधि होते हैं। श्री एल० टी० नरसिंहाचारी के निम्न विचार देखिए :—

"महाकाव्य जातीय संस्कृति के प्रतिनिधित्व करने वाले होते हैं। वह संस्कृति, जो अपरिवर्तनशील है। रामायण-महाभारत भारतीय जाति का अर्थात् जनता का, उसकी संस्कृति का प्रतिनिधित्व करने वाले हैं। प्रत्येक भारतीय व्यक्ति के जीवन के साथ उनका सम्बन्ध है। हमारी रीति-नीति, धर्म, अन्तःकरण, परिवारिक एवं दाम्पत्य जीवन, संस्कार, सभ्यता आदि सभी में शताब्दियों पहले का रंग है....आदर्श हमारे वे ही हैं और उन्हीं के अनुसार हम चलते हैं....भावविचार, जीवन-दृष्टिकोण कुछ विशेष बदला नहीं है....मर्यादा की वही सीमा आज भी हमारे जीवन में यथावत् वर्त्तमान है। एक महाकाव्य की रचना जीवन के मानसिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक मूल्यों के आधार पर ही, जनता की चिरकालीन अभिलाषाओं की पूर्ति के हेतु हो सकता है।"*

वास्तव में उक्त विचारधारा में गहरी सत्यता है। विश्व के प्रसिद्ध महाकाव्यों के अध्ययन से पता चलता है कि वे जातीय संस्कृति के प्रतिनिधि होते हैं। "इलियड"; "ओडेसी"; "पैराडाइज लौस्ट" इत्यादि महाकाव्य अपनी-अपनी जातियों के संस्कारों, आकांक्षाओं, आदर्शों, मानसिक-सांस्कृतिक मूल्यों को अपने-अपने ढंग से अभिव्यक्त करते हैं। भारत में रामायण एवं महाभारत हमारी जातीय संस्कृति, आकांक्षाओं, आदर्शों एवं जीवन के प्रति आध्यात्मिक दृष्टिकोण को प्रकट करते हैं। राम एवं कृष्ण के चरित्रों में हमें अपनी जातीय संस्कृति के उच्चतम आदर्श मिले हैं। मध्ययुग में राष्ट्रवाद हमारे जातीय आदर्शों का अविभाज्य अंग बन गया था। यह राष्ट्रीय भावना "पृथ्वीराजरासो" में मुखरित हुई। जिस जाति की जैसी संस्कृति रही, वैसे ही महाकाव्य विश्व के सम्मुख आते रहे हैं। महाकाव्य जाति विशेष की संस्कृति का दर्पण कहा जा सकता है।

---

* देखिए श्री एल० टी० नरसिंहाचारी का लेख "महाकाव्य की व्यापकता" "कल्पना" सितम्बर १९५३ पृष्ठ ७४०।

## महाकाव्य के लक्षण

महाकाव्य के क्या लक्षण होने चाहिए? यह प्रश्न विवादास्पद है, क्योंकि इनमें समय-समय पर बहुत सा परिवर्तन होता रहा है। प्राचीन संस्कृत विद्वानों द्वारा प्रतिपादित लक्षण आज बदल चुके हैं; नए कवियों ने अपने नए ढंग से महाकाव्यों में जीवन की व्याख्या की है, विभिन्न दशाओं और अवस्थाओं का चित्रण किया है। आकार तथा व्यापकता की दृष्टि से भी परिवर्त्तन हो चुके हैं। परिभाषाओं तथा लक्षणों को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है (१) प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में प्रतिपादित भारतीय दृष्टिकोण (२) पाश्चात्य दृष्टिकोण (३) आधुनिकतम दृष्टिकोण।

## प्राचीय भारतीय दृष्टिकोण

प्राचीन संस्कृत लक्षण ग्रन्थों में शास्त्रीय परम्परा के अनुसार महाकाव्य के लक्षणों पर विभिन्न काव्य मर्मज्ञों ने अपने विचार प्रकट किए हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से इन लक्षणों का निजी महत्व है। छटी शताब्दी में आचार्य दण्डी तथा १५ वीं शताब्दी में आचार्य विश्वनाथ ने लक्षणों पर प्रकाश डाला है। दण्डी के "काव्यादर्श" तथा विश्वनाथ के "साहित्य दर्पण" में इनकी विस्तृत विवेचना है। दण्डी से "काव्यादर्श" में प्रतिपादित लक्षण इस प्रकार हैं :—

"सर्गबन्धो महाकाव्यमुच्यते तस्य लक्षणम्।
आशीर्नमस्क्रिया वस्तुनिर्देशो वापि तन्मुखम्।
इतिहासकथाद्भतमितरद्वा सदाश्रयम्।
चतुर्वर्गफलायत्तं चतुरोदात्तनायकम्।
नगरार्णव शैलतु चन्द्रार्कोदयवर्णनैः।
मंत्र दूतप्रयाणाजिन नायकाभ्युदयैरपि।
अलंकृतमसंक्षिप्त रसाभावनिरन्तरम्।
सर्गैरनतिविस्तीर्णैः श्रव्यवृत्तैः सुसंधिभिः।
सर्वत्रभिन्नवृत्तान्तैरुपेतं लोकरजंनम्।
काव्य कल्पान्तरस्थायि जायतेसदलंकृतिः।

अर्थात् महाकाव्य का (१) सर्गों में विभाजित होना अनिवार्य है। ये सर्ग न बहुत बड़े हों, न अति संक्षिप्त हों। (२) आमुख में, अर्थात् प्रारम्भ में आशीर्वाद, देवनमस्कार अथवा ग्रन्थ के कथानक का संकेत देने वाले पद्य होने चाहिए। (३) महाकाव्य का कथानक इतिहास, लोकप्रिय कथा या अन्य सद्वृत्त पर आश्रित होना चाहिए (४) धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि चारों मानव-लक्ष्यों का उल्लेख होना चाहिए (५) महाकाव्य का प्रधान पात्र अर्थात् नायक चतुर और उदात्त हो (६) महाकाव्य में नगर, समुद्र, पर्वत, ऋतु, चन्द्रोदय तथा सूर्योदय के रूप में प्रकृति वर्णन हों; उद्यान-विहार, जल-क्रीड़ा, मधु-पान आदि के रूप में उत्सव वर्णन हों; विप्रलम्भ, विवाह, कुमार-जन्म आदि रूप में पारिवारिक जीवन का चित्रण हो तथा मंत्रणा, दूतप्रयाण, युद्ध, नायक के अभ्युदय आदि के रूप में सामाजिक एवं राजनैतिक जीवन का चित्रण हो (७) महाकाव्य का आकार विस्तृत हो (८) अलंकार, रस तथा भाव का चित्रण हो (६) लोकरंजन उसका लक्ष्य हो (१०) भिन्न-भिन्न वृत्तों का सर्गों में प्रयोग हो (११) नाटकीय सन्धियों तथा श्रव्यत्व गुण से युक्त हो। इन गुणों के कारण महाकाव्य दीर्घ काल तक स्थायी रहने वाला होता है।"

पन्द्रहवीं शताब्दी के आचार्य विश्वनाथ द्वारा निरूपित महाकाव्य के लक्षण इस प्रकार हैं:—

"सर्गबन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः।
सद्वंशः क्षत्रियो वापि धीरोदत्त गुणान्वितः।
एकवंश-भवा भूपाः कुलजा बहवोऽपिवा।
शृङ्गारवीर शान्तानामेकोऽङ्गी रस इष्यते।
अङ्गानि सर्वेऽपि रसाः सर्वे नाटक-संधयः।
इतिहासोद्भवं वृत्तमन्यद्वा सज्जनाश्रयम्।
चत्वारस्तस्य वर्गाः स्युस्तेष्वेकं च फलं भवेत्।
आदौ नमस्क्रियाशीर्वा वस्तुनिर्देश एव वा।
एकवृत्तमयैः पद्यैरवसानेऽन्य वृत्त कैः॥

नातिस्वल्पा नाति दीर्घा सर्गा अष्टाधिका इह ।
नाना वृत्तमयः क्वापि सर्गः कश्चन दृश्यते ।
सर्गान्ते भाविसर्गस्य कथायाः सूचनं भवेत ।
संध्यासूर्येन्दु रजनी प्रदोपध्वान्तवासराः ॥
प्रातर्मध्याह्न मृगयाशै लतुर्वनसागराः ।
संयोगविप्रलम्भै च मुनिस्वर्गपुराध्वराः ॥
रणप्रयाणोपममन्त्र पुत्रोदयादयः ।
वर्णनीया यथायोगं साङ्गोपाङ्गा अमी इह ॥
कवेर्वृत्तस्य वा नाम्ना नायकस्येतरस्यवा ।
नामास्य सर्गोपादेयकथया सर्ग नाम तु ॥

उपरोक्त लक्षणों का वर्गीकरण हम हिन्दी में इस प्रकार कर सकते हैं:—

१—महाकाव्य सर्गवद्ध होना चाहिये। एक सर्ग में एक ही छन्द रहना चाहिए—जो अन्त में बदल जाना चाहिए।

२—इसके कथानक का नायक कोई सुर या कुलीन क्षत्रिय हो, जिसमें धीरोदात्त नायक के समस्त गुण हों (अर्थात् नायक गम्भीर, क्षमावान्, आत्मश्लाघाहीन्, स्थिर तथा अहंकारयुक्त हो)। एक ही वंश के कई राजा भी इन गुणों से युक्त हो सकते हैं।

३—महाकाव्य में शृङ्गार, वीर और शान्त रसों में से एक प्रधान हो शेप गौण रूप से मुख्य रस के सहायक हों।

४—कथावस्तु के संगठन में सब सन्धियों का प्रयोग होना चाहिए।

५—कथानक या तो इतिहास प्रसिद्ध हो या किसी सज्जन के चरित्र से सम्बन्धित हो।

६—महाकाव्य का लक्ष्य चतुवर्ग (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) की प्राप्ति है।

७—इसके प्रारम्भ में मंगलाचरण, ईशवन्दना, आशीर्वाद अथवा कथा वस्तु के निर्देश के पश्चात् सज्जनों की प्रशंसा तथा असज्जनों की निन्दा भी होती है।

८—छन्द सर्ग के अन्त में बदल जाता है किन्तु प्रवाह की एकता के लिए छन्द की एकता अनिवार्य है।

९—यथा अवसर महाकाव्य में संध्या, सूर्य, चन्द्र, रात्रि, सायं, अंधकार, दिवा, प्रभात, मध्याह्न, मृगया, पर्वत, ऋतुओं, वनों, सागरों, संभोग, विप्रलंभ, ऋषियों, स्वर्ग, नगरों, यज्ञों, युद्धों, आक्रमणों, विवाहोत्सवों, यंत्रणा, कुमार जन्मादि विषयों का सविस्तार वर्णन होना चाहिए।

१०—महाकाव्य का नामकरण कवि के नाम पर अथवा कथानक, नायक या अन्य पात्र पर होना चाहिए, परन्तु प्रत्येक सर्ग का नाम उसके वर्ण्य विषय के आधार पर होना चाहिये।

शास्त्रीय परम्परा के उक्त लक्षणों पर गम्भीरता से विचारने पर स्पष्ट हो जाता है कि हमारे यहाँ आचार्यों ने महाकाव्य को मानव-जीवन तथा समाज को एक सर्वाङ्गीण चित्र के रूप में देखा था। महाकाव्यों के निमित्त ऐसे कथानक को चुना जाता है, जिसकी सत्यता का कोई ऐतिहासिक आधार हो तथा जिसमें आदर्शवाद ( सदाश्रयत्व ) की प्रतिष्ठा हो। प्रधान पात्र कोई कुलीन क्षत्रिय हो, जिसमें धीरोदात्त नायक के गुण हों। अर्थात् जो नायक शोक, क्रोध आदि से विचलित न हो; क्षमावान् अति गम्भीर, स्थिर और दृढ़वती हो, जिसका गर्व विनय से ढका हुआ हो; जो काम को उठाकर निभाये। महाकाव्यों में प्रतिपादित जब उच्च वृत्तियों का उत्कर्ष हम देखते हैं, तो स्वतः हमारे उच्च गुणों को विकसित होने की प्रेरणा प्राप्त होती है। महाकाव्यों में चतुर्वर्ग ( अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष ) प्राप्ति का लक्ष्य है। वीर, शृङ्गार या शान्त रसों की उपस्थिति से लोकरंजन का भाव भी सन्निहित है। ये चारों लक्षण महाकाव्य की आत्मा हैं।

दूसरे वर्ग में वे लक्षण आते हैं, जो बाह्य हैं और जिनका सम्बन्ध महाकाव्य के शरीर मात्र से है। केवल इन्हीं लक्षणों के होने से कोई दीर्घाकार काव्य महाकाव्य नहीं बन पाता। केवल इन्हीं लक्षणों पर आधारित होने के कारण कुछ काव्य महाकाव्य के आकार के होते हुए भी महाकाव्य नहीं हैं। इस वर्ग में जो लक्षण आते हैं, वे इस प्रकार हैं—(१)

सर्गों की रचना तथा संख्या। यह संख्या आठ से बारह तक है। विस्तार की दृष्टि से पद्य संख्या भी ३० से २०० तक निश्चित कर दी गई है। (२) महाकाव्यों के अन्तर्गत वर्णित विषयों की सूची पर्याप्त लम्बी है। डा० फतेहसिंह ने प्रतिपाद्य विषयों को मानव-जीवन के इन चार भागों में इस प्रकार विभाजित किया है:—

१—चतुवर्ग की प्राप्ति।

२—संध्या, सूर्य, चन्द्र, रजनी, प्रदोष, ऋतुओं, पर्वतों, वनों, सागरों इत्यादि प्राकृतिक उपकरणों का वर्णन।

३—संभोग, विप्रलम्भ, विवाहोत्सवों, कुमार जन्म आदि मानवीय सामाजिक जीवन का वर्णन।

४—आक्रमण, युद्ध, मंत्रणा, ऋषि मुनि यज्ञों आदि सार्वजनिक जीवन के उपकरणों का वर्णन।

"भारतीय महाकाव्य व्यक्ति के जीवन का अध्ययन प्रकृति, परिवा और समाज के स्वभाविक सन्निकर्ष में करना चाहता है····मानव-जीव का पूर्ण चित्र इस व्यापक विस्तृत पृष्ठभूमि के बिना नहीं मिल सकता···· चतुर्वर्ग समन्वित भारतीय आदर्श की पूर्णता के लिए, यह आवश्यक है कि मानव की सम्पूर्ण लीला भूमि का अध्ययन और चित्रण किया जाय। यह लीला भूमि प्रकृति, परिवार तथा समाज की समवेत भूमि है इसी को उसकी विविधता तथा विभिन्नता के साथ चित्रित करने के लिए भारतीय महाकाव्य ने अपना वर्ण्य विषय बनाया है।"*

दण्डी से पूर्व भी संस्कृत में अनेक महाकाव्यों की रचना हो चुकी थी किन्तु उनके लक्षणों का प्रभाव अनेक कवियों की प्रतिभा पर पड़ा था। "शिशुपालवध"; "किरातार्जुनीय"; "नैसधचरित" आदि महाकाव्य इसी रूढ़िवादी दृष्टिकोण पर लिखे गये थे। न केवल संस्कृत पर, हिन्दी के प्रारम्भिक महाकाव्यों की रचना भी इन्हीं की दृष्टि में रख कर की गई थी। हरिऔध के "प्रिय प्रवास" तक में महाकाव्य के इन्हीं लक्षणों का प्रभुत्व दृष्टिगोचर होता है।

---

* डा० फतेहसिंह "कामायनी सौन्दर्य" पृष्ठ ४८

यात्रा, तथा ऋतु वर्णन आदि द्वारा अनुप्रवेश हो जाता है''''आजकल पुरातन आदर्शों का अनुसरण स्पष्ट रूप से नहीं किया जा रहा है आदर्शों में परिवर्तन और संशोधन हो रहे हैं नवीन आदर्शों की सृष्टि भी की जा रही है।"

श्री क्षेमचन्द्र "सुमन" तथा योगेन्द्रकुमार मल्लिक ("साहित्य विवेचन" से)

"महाकाव्य के लिये चार बातों के निर्वाह की अपूर्व क्षमता कवि में होनी चाहिये—(१) प्रबन्ध बद्ध कथानक (२) चरित्र चित्रण (३) दृश्य वर्णन (४) रस। कथानक पहली आवश्यकता है; और संक्षेप में कहना चाहें तो महाकाव्य में कथानक विराट हो, साथ ही काव्यात्व महान् हो। प्रबन्ध निर्वाह आवश्यक है।"

—श्री विश्वम्भर "मानव" "खड़ी बोली के गौरव ग्रन्थ" से।

"महाकाव्यों में दो तत्व प्रमुख हैं। एक है उसका संघटन और दूसरी उसका वर्णन। महाकाव्य की रचना सर्गवद्ध होती है। + सर्ग का अर्थ अध्याय है। कुछ सर्गों में कथा को विभाजित करके उसका वर्णन किया जाता है। कथा का खण्ड कर लेने से उसका वर्णन करने में सुगमता होती थी। महाकाव्य के आठ सर्ग हों'''सर्ग का लक्ष्य यही जान पड़ता है कि कथा का सुभीते के अनुसार विभाजन करके उनका विधान करना'''एक सर्ग में एक ही छन्द का व्यवहार किया जाय, पर अन्त में छन्द बदल दिया जाय, पर महाकाव्य के किसी सर्ग में यदि विविध छन्द रख दिए जायँ, तो कोई बात नहीं, × पर प्रत्येक सर्ग में ऐसा करने से प्रवाह खण्डित हो जाता है। सर्गों में चरितनायक की कथा अवश्य आनी चाहिए और अन्त में आगे की कथा का आभास भी मिलना चाहिए क्रमबद्धता बनी रहे। प्रबन्ध के विचार से काव्य-पाठक को कथा के क्रम से परिचित होना चाहिए। महाकाव्य में रमणीयता का विशेष ध्यान रखा जाता है। इस दृष्टि से महाकाव्य घटनात्मक एवं वर्णनात्मक दोनों ही होता

+ "सर्गबन्धो महाकाव्यम्"—साहित्य दर्पण

× "नानावृत्तमयः क्वापि सर्गः कश्चन दृश्यते"—साहित्य दर्पण

है। कथा प्रख्यात होनी चाहिए, कल्पित नहीं, इससे रस संचार या साधारणीकरण दोनों में सहायता प्राप्त होती है महाकाव्य में आदर्शवाद की ही प्रतिष्ठा रहती है, यथातथ्यवाद की नहीं। ग्रन्थारम्भ में मंगलाचरण होना चाहिए—नमस्कारात्मक, आशीर्वादात्मक और वस्तु निर्देशात्मक। मंगल के ही अन्तर्गत कहा गया है कि सज्जनों की प्रशंसा और असज्जनों की निन्दा करनी चाहिए। ÷ शृङ्गार या वीर में से कोई एक रस प्रधान कहा गया है। चरित नायक या नायक के नाम अथवा प्रमुख घटना के नाम पर नामकरण होता है। महाकाव्यों में वस्तु वर्णन का सबसे अधिक ध्यान रखने की योजना है। संध्या, सूर्य चन्द्र, रात्रि, प्रदोप, अन्धकार, दिन, प्रातः, मध्याह्न, आखेट, पर्वत, ऋतु, वन, समुद्र संभोग, वियोग, मुनि, स्वर्ग, नगर, यज्ञ, संग्राम, यात्रा, विवाह, मंत्र, पुत्र, अभ्युदय आदि का साङ्गोपांग वर्णन महाकाव्य के लिए आवश्यक है।

इन वर्णनों के उल्लेख का परिणाम यह हुआ कि कुछ कवि वर्णन को ही महाकाव्य का लक्षण समझने लगे.......पर कवि को महाकाव्य लिखते हुए शास्त्र सम्पादन की इच्छा नहीं करनी चाहित प्रत्युत रस की अभिव्यक्ति पर ही ध्यान देना चाहिए। * संक्षेप में महाकाव्य के मुख्य तत्त्व चार हैं—( १ ) सानुबन्ध कथा ( २ ) वस्तुवर्णन, ( ३ ) भावव्यंजन ( ४ ) संवाद।—श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र "वाङ्मय विमर्श"

"महाकाव्य में तीन गुण अपेक्षित हैं—(१) प्रबन्धात्मक या सर्गबद्ध आख्यान (२) विराट् और जातिव्यापी चरित्र। और विषय ३—शैली औदात्य और गाम्भीर्य। महाकाव्य की भारतीय कल्पना में एक ऐसे नायक का जीवन होना चाहिए जिसका व्यक्तित्व विविध गुण सम्पन्न हो जो ऐतिहासिक और जातीय महापुरुष हो और उसकी जीवन कथा भी ऐसी हो जिसमें समस्त जाति ( या राष्ट्र ) के विशाल जीवन अपनी भाव

---

÷ क्वचिन्निन्दा खलादीनां सतां च गुणकीर्त्तनम्—"साहित्य दर्पण"

* "सन्धिसन्ध्यङ्गघटन रसाभिव्यक्त्यपेक्षया।
न तु केवलया शास्त्रीयस्थतिसंपादनेच्छया"—ध्वन्यालोक

नाओं, अनुभूतियों, परम्पराओं, रीतिनीतियों और आदर्शों के साथ प्रतिबिम्बित हों। भारतीय महाकाव्य अनिवार्यतः जातीय महाकाव्य रहा है.......वर्णन शैली में औदात्य और गाम्भीर्य होना चाहिए। उसमें साधु शिष्ट भाषा, पद लालित्य, गुणों का समावेश, दोषों का परिहार और रस की परिपक्वता अपेक्षित है।"—डा० सुधीन्द्र

"महाकाव्य के प्रमुख पांच तत्त्व हैं—(१) सानुबन्ध कथा (२) वस्तु वर्णन (३) भाव-व्यंजना (४) देशकाल (५) शैली। कथा-प्रवाह पर विशेष ध्यान दिया जाता है....... किसी सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक गाथा को लेकर अपनी संगठित सामूहिक शक्ति द्वारा मानव-आदर्श और विश्वरुचि की स्थापना की जाती है.......प्रमुख इतिवृत्त के साथ गौण कथानकों, सर्वथा नवीन काल्पनिक घटनाओं, रसात्मक प्रसंगों और महत्वपूर्ण जीवन दशाओं को भी समाविष्ट किया जा सकता है.......मनोज्ञ वर्णनों पर भी कवि का ध्यान केन्द्रित होना चाहिए.... "जीवन के चित्रिण के रूप में महाकाव्य का महत्त्व मनुष्य की मूल प्रवृत्तियों के संघर्ष में है.......महाकवि जिस कथा खण्ड और जीवन के उदात्त लक्ष्य को लेकर चलता है, उसे तत्कालीन सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक वातावरण की सापेक्षता में रखकर ही देखता जाँचता और अपने विषय का प्रतिपादन करता है.... " शैली प्रभविष्णु और उदात्त होनी चाहिए ताकि स्वानुभूति और लोकानुभूति के सर्व सामान्य तत्त्वों को समन्वित किया जा सके।"—शचीरानी गुर्टू एम० ए० ( काव्य दर्शन )

## महाकाव्यों पर पाश्चात्य दृष्टिकोण

महाकाव्यों का पाश्चात्य दृष्टिकोण क्या है? इस दृष्टि से विचार करने पर विदित होता है कि उन्होंने महाकाव्य पर इतना सूक्ष्म विचार नहीं किया है। महाकाव्य की विस्तृत परिधि, वर्णन बाहुल्य, प्रतिष्ठित एवं लोकप्रिय घटना ,पात्रों के शौर्य, कथानक की प्रबन्धकत्मकता, शैली की महानता के महत्त्व को स्वीकार करते हुए पाश्चात्य आलोचकों ने महाकाव्य को जातिगत भावनाओं की अभिव्यक्ति का एक माध्यम माना है।

है कि जहाँ भारतीय महाकाव्यों में बाह्य उपाङ्गों पर अधिक जोर दिया गया है, पाश्चात्य महाकाव्यों में जातीयता तथा संस्कृति को महत्त्व पूर्ण माना गया है। पाश्चात्य महाकाव्यकार शैली की शालीनता Grandoor को विशेष स्थान देते हैं। होमर का "इलियड" ग्रीक संस्कृति का तो प्रतिनिधित्व करता ही है, अपनी शैली की विशदता, शालीनता और उत्कृष्टता के कारण भी सर्व प्रिय हैं। अंग्रेजी में मिल्टन के "पैराडाइज लौस्ट अंग्रेज संस्कृति और ईसाई धर्म की भावनाओं की तो प्रधानता है ही, काव्य की शैली भी उदात्त है। इन महाकाव्यों में बाह्य उपकरणों को महत्त्व प्रदान नहीं किया गया है, प्रत्युत भावों की उदात्तता और गम्भीरता का अनुभव कराने में ही इनका वास्तविक महत्ता है।

भारतीय तथा अंग्रेजी दृष्टिकोणों में समानता यह है कि "महाकाव्य में वर्णित विषय का उचित परिपाक, व्यंजना की प्रगल्भता और छल छलाता रस-प्रवाह होना चाहिए। जिसमें उत्कृष्ट व्यंजना, वैलक्षण्य और महाकाव्य नहीं-वह आकार में बड़ा होने पर भी महाकाव्य कहलाने का अधिकारी नहीं है। महाकाव्य में जीवन-समष्टि की आधारभूत झाँकी, पार्थिव कर्त्तव्यों एवं चेष्टाओं का अवसान, सत्य, सौन्दर्य एवं स्वातन्त्र्य का अनूठा सम्मिश्रण और बाह्य एवं अन्तर्जगत् को परिप्लावित करने वाली मंगलमयी निर्मल मंदाकिनी निर्झरित होती है, जिसमें अद्भुत की शान्ति और सम्पूर्णता व्याप्त रहती है। +

प्राच्य तथा पाश्चात्य दोनों दृष्टिकोणों का सामजंस्य करने पर हम महाकाव्य की परिभाषा इस प्रकार कर सकते हैं :—'महाकाव्य वह है, जिसमें अनेक सर्गों अथवा खण्डों में कथा विभक्त रहती है, जिसमें किसी महान् कथावस्तु का अवलम्बन करके एक या अनेक वीरोचित चरित्रों की अवतारणा की जाती है अथवा अलौकिक शक्ति द्वारा सम्पादित किसी नियति,निर्दिष्ट घटना का ओजस्वी वर्णन किया जाता है।' ×

---

+ शचीरानी गुर्टू एम० ए०

× श्री कन्हैयालाल सहल एम० ए०

आधुनिकतम दृष्टिकोण

नवीन महाकाव्यकार पुराने रूढ़िवादी लक्षणों से बँधे न रह कर कृत्रिमता की अवहेलना कर भाव प्रसार. जीवन के विविध पक्ष, विभिन्न दशाओं और अवस्थाओं के चित्रण की ओर बढ़े हैं। वे महाकाव्य के रूप में ऐसा 'वृहत् आकार का काव्य उपस्थित करने में प्रयत्नशील हैं, जिसमें मानव जीवन की सर्वाङ्गीणता के आधार पर ही किसी महाकाव्य की महत्ता नापी जाय। उसमें जीवन का सूक्ष्म निरीक्षण, व्याख्या, गहराई और विकासोन्मुख स्वस्थता हो; महाकाव्यकार जीवन की ऐसी व्याख्या करे जो शाश्वत हो। []

आधुनिक कवि रूढ़ि में नहीं पड़ना चाहता। वह वाह्य लक्षणों के बल पर नहीं, काव्य में प्रतिपादित कथानक, विशदता और भावों की उच्चता के बल पर महाकाव्य की महत्ता रखना चाहता है। सर्गों की संख्या, या आकार-विस्तार को कोई महत्ता नहीं दी जा रही है। विषय तथा शैली की उदात्तता की ओर ध्यान दिया जा रहा है, पर जातीय संस्कृति का प्रतिनिधित्व और जनता के लिए आदर्श नहीं मिलते। नए महाकाव्यों में उस गम्भीरता का अभाव है, जो वास्तव में एक महाकाव्य में होनी अनिवार्य है। वास्तव में सच्चे अर्थों में महाकाव्य वे ही हैं जिनने सानुबन्ध कथा, वस्तु, वर्णन, भाव व्यंजना के साथ-साथ शैली में गरिमा एवं ओज है।

---

[] "महाकाव्य एक ओर समस्त जाति की वस्तु है, दूसरी ओर उसमें सम्पूर्ण मानव-जीवन का समावेश होना चाहिए। जीवन के विविध पक्ष, भाव प्रसार, मानवमन की विभिन्न दशाओं और अवस्थाओं का चित्रण किया जाना चाहिए। जीवन की यह समग्रता नायक के सम्पूर्ण जीवन को लेने पर ही सम्भव हो सकती है और उसका जीवन क्षेत्र विस्तृत होने से मनुष्य और मनुष्य के सम्बन्धों के चित्र उभर सकते हैं। यह व्यापकता बढ़ते-बढ़ते समस्त मानवता को और साथ ही बराबर प्रकृति को लेकर एक सम्बद्ध अखण्डता का रूप धारण कर लेती है।"—

—"एल० टी नरसिंहाचारी"

## (द्वितीय खण्ड)

# भारतीय महाकाव्यों की परम्परा

कवि शिरोमणि महर्षि वाल्मीकि भारतीय महाकाव्यों के जन्मदाता माने जा सकते हैं। उन्हीं की प्रशस्त लेखनी से प्रसूत होकर "रामायण" महाकाव्य जैसे महान् अमर ग्रन्थ रत्न की रचना हुई और आज भी यह भारत की विश्व साहित्य को एक बहुमूल्य देन है। "वाल्मीकि रामायण" जैसा अमर ग्रन्थ न केवल काव्य की दृष्टि से वरन् आदर्श सामाजिक व्यवस्था, मानव की अन्तर्वृत्तियों, तथा विचारधाराओं की दृष्टि से एक साहित्यिक प्रकाश-स्तम्भ के रूप में खड़ा आज भी हमें अपनी साहित्यिक छटा से देदीप्यमान कर रहा है। इसमें चित्रित रामराज्य का आदर्श पृथ्वी पर समग्र सुखों की सृष्टि करने वाला है। अपनी विलक्षण काव्य प्रतिभा गरिमा तथा ओज के कारण अतीत कालीन भारत का यह सर्वोत्तम महाकाव्य कहा जा सकता है।

द्वितीय उल्लेखनीय महाकाव्य महर्षि वेदव्यास का "महाभारत" है। "महाभारत" इस देश की राष्ट्रीय ज्ञान संहिता है। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के शब्दों में, "व्यास का वाङ्मय-रूपी अमृत भारत राष्ट्र में व्याप्त है। वेदनिधि द्वैपायन का यह महाभारत रूपी कमल गंगा की अन्तर्वेदी में विकसित हुआ सुरभित कमल है। लोकों को पवित्र करने वाले इस महाकवि ने अपनी क्रान्तिदर्शिनी प्रतिभा से शाश्वती बुद्धि का जो महान् प्रज्ञा-स्कन्ध उत्पन्न किया है, वही महाभारत है। इसमें वेद और लोक का अपूर्व समन्वय है। सूक्ष्म अर्थ और न्याय से युक्त, वेदार्थों से अलंकृत, नाना-शास्त्रों से उपबृंहित, विलक्षण रचना-कौशल से संस्कार-सम्पन्न भारत के

इतिहास और पुराण की ब्राह्मी-संहिता का ही नाम "महाभारत" है। यह पवित्र अर्थशास्त्र है, यह परमधर्म शास्त्र है और उच्चतम मोक्षशास्त्र है; यह महान् कल्याणकारी है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का निचोड़ इस ग्रन्थ में आगया है।)

उपर्युक्त महाकाव्यों के पश्चात् संस्कृत में अन्य कई उल्लेखनीय महाकाव्यों की रचना हो चुकी है। इनमें कवि कुलगुरु कालिदास का "रघुवंश" महाकवि भारवि का "किरातार्जुनीय" तथा कवि शिरोमणि माघ का "शिशुपाल वध" आदि प्रमुख हैं। भारतीय साहित्य के ये अमर ग्रन्थ रत्न हैं, जो निरन्तर भारत को पुण्य चरितों, इतिहास और पुराणों के सार, देव दानव के तत्त्वों की विशद व्याख्या भव्य एवं ओजपूर्ण काव्य शैली में करते रहे हैं। इनमें हिमालय-सी गरिमा एवं ओज वर्तमान है। "साहित्य दर्पण" आदि काव्य शास्त्रों के लक्षणों के अनुसार इनमें सर्गबंध कथ चरित्र सृष्टि, विचार गांभीर्य ओजस्वी भाषा-शैली का निर्वाह है।

# हिन्दी महाकाव्यों का इतिहास

## वीरगाथा काल में महाकाव्य :—

यह वह युग था, जब राज्याश्रित कवि अपने राजाओं को प्रसन्न करने के हेतु उनके शौर्य, पराक्रम, वीरता तथा युद्धों का वर्णन ओजपूर्ण शैली में कर वीर भावों को उद्दीप्त करते थे। ये वीर काव्य जनता में इतने प्रसिद्ध हुए कि वे घर-घर इनका पाठ कर वीरोल्लास का आनन्द लेते थे। जागनिक भाट कृत "आल्हा" इसी वर्ग का वीर काव्य है। नरपति नाल्ह का "वीसलदेव रासो" स्वभाविक ओजपूर्ण शैली में एक वीर रस प्रधान खण्ड-काव्य है। इस युग की सर्वोत्कृष्ट रचना कविवर चन्दवरदाई कृत "पृथ्वीराजरासो" (महाकाव्य) है इतना युग व्यतीत हो जाने पर भी इसकी काव्य गरिमा एवं ओज उसी प्रकार प्रभावशाली बना हुआ है।

चन्द का "पृथ्वीराजरासो" हिन्दी साहित्य के वीरगाथा युग का सर्वाधिक विशालकाय महाकाव्य है। महाकाव्यों के इतिहास में यह प्रथम स्थान का अधिकारी है। इस महाकाव्य में २५०० पृष्ठों एवं ६६ सर्गों; छप्पय, दूहा, तोमर त्रोटक आदि छन्दों, शौर्यपूर्ण शैली की डिंगल भाषा में चौहानवंश के उच्च कुलीन क्षत्रिय महाराज पृथ्वीराज की जीवन घट-नाओं, वीरता, साहस, उदात्तता का सविस्तार चित्रण किया गया है। इस महाकाव्य का प्रधान रस वीर है, किन्तु गौण रूप में शृङ्गार तथा शान्त रसों का भी कलात्मक सम्मिश्रण है।

विषय की दृष्टि से इसमें पृथ्वीराज-संयोगिता के प्रेम, गंधर्व विवाह, जयचन्द से युद्ध, शहाबुद्दीन का आक्रमण किन्तु पराजय, अन्ततः महाराज पृथ्वीराज का बन्दी बनना, कवि चन्दवरदाई का ग़ज़नी पहुँचना, चन्द के

तन निकट चीर डारयौ उतार।
मंडान मयंक नव सत सिंगार॥
भूषन मंगाय नपसिप अनूप।
सजि सेन मनो मन मथ्य भूप॥

"पद्मावती समय" के पूर्वार्द्ध में कवि ने शृङ्गार-रस का आधार ग्रहण किया है और उसके उत्तर भाग में वीर-रस को उसका वांछित स्थान तथा गौरव प्रदान किया है। शृङ्गार का समावेश वीर-रस के सहायक तत्त्व के रूप में हुआ है। अवसर प्राप्त होते ही कवि की चेतना वीर-रस के चित्रण की ओर अभिमुख हो गई है।" )

चन्द का रस-निर्वाह बड़ा कलात्मक एवं प्रभावशाली रहा है। वीर रस के तो वे आचार्य ही कहे जा सकते हैं। न केवल प्रमुख पात्र की वीरता की ही वरन् विपक्षी के शौर्य का वर्णन भी वे सजगता से कर सके हैं। युद्धों के वातावरण का निर्माण बड़ी सजीवता से हुए हैं।

"रासो" की भाषा विवाद का विषय बनी हुई है। कुछ मत इस प्रकार हैं:—

"रासो" की भाषा की भिन्नकालीन विषमता तो "रासो" की प्रमाणिकता को सबसे अधिक नष्ट करती है। एक ही शब्द के विभिन्न रूपों में दर्शन होते हैं। अरबी फारसी शब्दों का प्रयोग सभी समयों में समान रूप से हुआ है। इन शब्दों को निकाल कर यदि "रासो" का संस्कार किया जाय तो कथा का रूप ही विकृत हो जायगा। —डा० रामकुमार वर्मा

"रासो" की भाषा बिलकुल बेबुनियादी है। इसमें व्याकरण आदि की कोई व्यवस्था नहीं है। दोहों और कुछ कवित्तों की भाषा तो ठिकाने की है; पर तोटक आदि छन्दों में अनुस्वरान्त शब्दो की ऐसी मनमानी भरमार है, जैसी संस्कृत, प्राकृत ग्रन्थों में होती है। कहीं-कहीं भाषा आधुनिक सांचे में दिखाई देती है और कहीं प्राचीन साहित्यिक रूप में।
—श्री रामचन्द्र शुक्ल

वास्तव में "रासो" की भाषा मिश्रित डिंगल है, जिसमें प्राचीन शब्दों

को ओजपूर्ण बनाने के लिए सूत्र तोड़ा-मरोड़ा गया है, कहीं भाषा विशृङ्खल शब्दों के प्रयोग, अलंकारों की भरमार, भिन्न बेमेल शब्दों प्रयोग, अपभ्रंश के शब्दों का समावेश है। व्याकरण की त्रुटियाँ हैं, विदे भाषाओं जैसे अरबी, फारसी, तुर्की के तत्सम एवं तद्भव के अनेक मिलते हैं। संक्षेप में, चन्द ने भाव-व्यंजना का ध्यान रखकर विधि भाषाओं का ओजपूर्ण सम्मिश्रण प्रस्तुत किया है।×

पृथ्वीराजरासो का क्या महत्त्व है ? इसके उत्तर में कहा जा सकता कि (१) इस ग्रन्थ में वीर गाथा काल का सबसे अच्छा प्रतिबिम्ब मिल है, (२) छन्दों का विशद विस्तार है। कवित्त, (छप्पय). दूहा, तोमर, त्रोट गाहा और आर्या आदि का प्रचुरता से प्रयोग हुआ है (३) भाषा जैसा सौष्ठव इसमें दिखाई पड़ता है, उतना तत्कालीन किसी ग्रन्थ में न है (४) पूरी जीवन-गाथा होने के कारण इसमें वीर-गीतों की सी संकीर्ण तथा वर्णनों की एक रूपता नहीं होने पाई है, वरन् नवीनता-समन्वि कथानकों की अधिकता है (५) वीर भावों की बड़ी सुन्दर अभिव्यक्ति है (६) कोमल कल्पनाओं तथा मनोहारिणी उक्तियों द्वारा इसमें अ

---

× इस सम्बन्ध में कु० उर्मिला वार्ष्णेय एम० ए०, के विचार प्रकार हैं :—"कुछ विद्वान "रासो" की रचना के साहित्यिक कोटि आने के कारण डिंगल भाषा मानते हैं और कुछ राजस्थानी शब्दों बहुलता के कारण पिंगल में गणना करते हैं। विभिन्न परिस्थितियों परिवर्तनों के कारण "रासो" की भाषा इतनी अव्यवस्थित है कि उ विषय में कोई निश्चयात्मक निर्णय नहीं दिया जा सकता। चंद ने स्व लिखा है "षट भाषा पुरान च कुरान च कथितं माया" के अनुस संस्कृत, पूर्वी हिन्दी, प्राकृत, अपभ्रँश, अरबी फारसी और तुर्की आ विविध भाषाओं से ही संबन्ध रखता है। उनके काव्य में इन स भाषाओं के शब्दों का सुन्दर सम्मिश्रण है। भाषा अपने सभी गुणों कारण सुन्दर और सजीव है।"

चमत्कार आ गया है (७) रसात्मकता के विचार से उसकी गणना हिन्दी के उत्कृष्ट काव्य ग्रन्थों में हो सकती है।+

जायसीकृत "पद्मावत" :—

पूर्व मध्यकाल में परिस्थितियाँ परिवर्तित हुईं। मुसलमानों का आजाने से हिन्दुओं के हृदय-कुसुम मलीन हो गए थे। जातीय गौरव एवं वीरता प्रदर्शन के लिए कोई अवकाश न था। हिन्दुओं के लिए यह धार्मिक, सांस्कृतिक या राजनैतिक दृष्टियों से निराशा का युग था। अतः शक्ति एवं प्रेरणा के लिए वे धर्म की ओर झुके और भक्ति का प्रभाव काव्य-द्वारा हिन्दू जनता में फैल गया। भक्ति का प्रभाव दो धाराओं में फैला (१) सगुण रामभक्ति धारा (२) निर्गुण धारा।

निर्गुण ज्ञानाश्रयी धारा ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, नीति ब्रह्मज्ञान से संबन्धित रही। कबीर इत्यादि महात्मा साधारणतः मुक्तक काव्य लिखते रहे। इस वर्ग की शुद्ध प्रेम मार्गी सूफी कवियों की धारा में कुतुबन की "मृगावती"; मंझन की "मधुमालती"; आदि प्रेम काव्यों के अतिरिक्त मलिक मुहम्मद जायसी का सुप्रसिद्ध महाकाव्य "पद्मावत" मिलता है, जो ईसवी सन् १५२० के लगभग लिखा गया था। प्रेम गाथा की परम्परा में यह महाकाव्य सबसे प्रौढ़ एवं सरस है।

कथानक :—

"पद्मावत" की रचना फारसी की मसनवी शैली पर है पर शृङ्गार वीर आदि के वर्णन चली आती हुई भारतीय काव्य परम्परा के अनुसार ही हैं। इसमें अलाउद्दीन और पद्मावती की ऐतिहासिक कथा को वर्ण्य-विषय बनाया गया है। अलाउद्दीन पद्मनी के रूप सौंदर्य पर मुग्ध होगया; राजा रतनसेन के पास पद्मनी को भेज देने के आग्रह का पत्र भेजा गया; राजा क्रुध हुआ; कई वर्ष तक अलाउद्दीन चित्तौड़ को घेरे पड़ा रहा; पद्मनी के रूप की झलक दिखाते समय छल कपट से अलाउद्दीन ने राजा रतनसेन को कैद कर लिया; पद्मनी अति व्याकुल हुई; गोरा बादल नामक

+ देखिए—डा० श्यामसुन्दरदास "हिन्दी साहित्य" पृष्ठ ६८।

दो सरदार तथा ७०० सशस्त्र सैनिक छिपकर दिल्ली पहुँचे, राजा की बेड़ियाँ काट दी गईं। वह घोड़ पर सवार हो चित्तौड़ पहुँच गए; देवपाल की दूती की बात सुनकर रतनसेन ने कुंभलनेर जा घेरा, युद्ध में देवपाल और रतनसेन मारे गए; नागमती तथा पद्मावती रतनसेन को शव के साथ भस्म हो गईं। कथानक को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है—(१) रतनसेन की सिंहलद्वीप यात्रा से पद्मनी की चित्तौर से आने तक (२) राघव चेतन के निकल जाने से पद्मनी के सती होने तक। प्रारम्भ की कथा पद्मनी और हीरामन तोता की प्रचलित कहानी पर आश्रित प्रतीत होती है पर जायसी ने कुछ नई कल्पनाएँ भी की हैं।

पद्मावत की प्रेम पद्धति* :—

हुए दिखाई देते हैं। सारी सृष्टि ईश्वर के पास पहुँचने को, उसी परम भाव में लीन होती हुई दिखाई देती है। लौकिक सौंदर्य वर्णन में भी कवि की दृष्टि उसी दैवी सौंदर्य की ओर संकेत करती दिखाई देती है। प्रेम पथिक रत्नसेन में सच्चे साधक भक्त का स्वरूप चित्रित किया गया है। पद्मनी ही ईश्वर से मिलाने वाला ज्ञान या बुद्धि है, सुआ सद्गुरु है, नागमती संसार का जंजाल और तनरूपी चित्तौर गढ़ का राजा मन है। राघव शैतान तथा माया में पड़ा हुआ अलाउद्दीन माया रूप है। इसी प्रकार यत्र तत्र गूढ़ अर्थ भरे पड़े हैं। अनेक दोहों का अर्थ दुहरा है। सिंहल के बाजार आदि के वर्णन में भी बीच-बीच में पारमार्थिक झलक प्रकट हो गई है पर कथानक की यह आध्यात्मिक अभिव्यंजना सर्वत्र सफलतापूर्वक निभ नहीं पाई है।

**प्रबन्ध कल्पना:—**

घटनाओं को आदर्श परिणाम तक पहुँचाने की ओर दृष्टि न रख कर जायसी ने यथार्थवादी स्वरूप ही प्रस्तुत किया है। जैसा संसार में उन्होंने देखा, वैसा ही अच्छा-बुरा चित्रित कर दिया है।

जायसी ने कथानक में घटनाओं की सम्बद्ध शृंखला और स्वभाविक क्रम रखा है; हृदय को स्पर्श करने वाले प्रसंगों को कलात्मक ढंग से संयुक्त किया है। इतिवृत्तात्मकता का निर्वाह इस ढंग से किया है कि मानव जीवन की अनेक ऐसी दिशाएँ आ जाती हैं, जिनमें भिन्न-भिन्न भावों की अभिव्यंजना हो पाई है। इन रसात्मक वर्णनों में ही उनकी प्रतिष्ठा है। शुक्ल जी के मतानुसार, पद्मनी और हीरामन तोते की कहानी अनेक मार्मिक स्थलों से परिपूर्ण है। इसमें प्रेम, वियोग, माता की ममता, यात्रा का कष्ट, विपत्ति, आनन्दोत्सव, युद्ध, जय-पराजय आदि के साथ-साथ विश्वासघात, वैर छल, स्वामि-भक्ति, पातिव्रत्य, वीरता आदि का भी विधान है। पर "पद्मावत" शृंगार रस प्रधान प्रबन्ध काव्य है। अतः घटना चक्र में जीवन दशाओं और पारस्परिक सम्बन्धों की एक रूपता नहीं है। जायसी का लक्ष्य प्रेम-पंथ का निरूपण है।

सम्बन्ध निर्वाह:—

जायसी ने आधिकारिक एवं प्रासंगिक कथाओं का योग बड़ी कुशलता से किया है। उनका सम्बन्ध निर्वाह उत्तम है। एक प्रसंग का दूसरे से गहरा हुआ सम्बन्ध है। हीरामन तोता खरीदने वाले ब्राह्मण की कथा, राघव चेतन का हाल, बादल का प्रसंग जैसी प्रासंगिक कथाओं का मूल कथावस्तु पर पूरा प्रभाव है। आधिकारिक कथावस्तु में वस्तु के आदि, मध्य, और अन्त तीनों स्पष्ट हैं। पद्मावती के जन्म से रत्नसेन के सिंहलगढ़ घेरने तक कथा-प्रवाह का आदि, विवाह से लेकर सिंहल द्वीप से प्रस्थान तक मध्य और राघव चेतन के देश निर्वासन से पद्मावती के सती होने तक वस्तु का अन्त है। आदि अन्त की सब घटनाएँ विवाह की ओर उन्मुख हैं।

वस्तु-वर्णन :—

वस्तु-वर्णन के लिए जायसी ने उपयुक्त अवसरों को चुना है। उनका वर्णन प्राचीन पद्धति पर होते हुए भी भावपूर्ण है। सिंहल द्वीप वर्णन के अन्तर्गत बगीचे, सरोवरों, कुओं, बावलियों, पक्षियों, नगर, हाट, गढ़, राजद्वार और हाथी घोड़ों का सुन्दर वर्णन है। अमराइयों की शीतलता भी प्रकट की गई है। सिंहल के पनघट वर्णन में नाना प्रकार, रुचि तथा प्रकृति की नारियों का वर्णन मनोवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि से किया गया है। बाजार के वर्णन में हिन्दू हाट की झलक मिल जाती है, नगर की सुख-समृद्धि चित्रित की गई है।

जलक्रीड़ा वर्णन में नारियों के कौमार्य तथा स्वाभाविक उल्लास स्वच्छ-न्दता का उत्तम वर्णन है। यात्रा वर्णन में यह सौंदर्य नहीं आ पाया है। चित्तौड़ से कलिंग तक रास्ते के जो भिन्न-भिन्न वन, पर्वत, नदी, निर्झर, ग्राम, नगर तथा भिन्न-भिन्न आकृतियों के पुरुषों के वर्णन की जायसी कोई आवश्यकता नहीं समझते। प्राकृतिक दृश्यों में उनका हृदय नहीं रमा है। प्रायः प्रकृति के नाना रूपों में उन्होंने ब्रह्म की सत्ता को देखा है। जैसे—

> "नयन जो देखा कमल भा, निरमल नीर शरीर।
> हँसत जो देखा हँस भा, दसन ज्योति नग हीर॥

जायसी सूर्य एवं चन्द्र में ब्रह्म की ज्योति का प्रकाश देखते हैं—

हुए दिखाई देते हैं। सारी सृष्टि ईश्वर के पास पहुँचने को, उसी परम भ
में लीन होती हुई दिखाई देती है। लौकिक सौंदर्य वर्णन में भी कवि
दृष्टि उसी दैवी सौंदर्य की ओर संकेत करती दिखाई देती है। प्रेम पा
रत्नसेन में सच्चे साधक भक्त का स्वरूप चित्रित किया गया है। पद्मनी
ईश्वर से मिलाने वाला ज्ञान या बुद्धि है, सुआ सद्‌गुरु है, नागमती सं
का जंजाल और तनरूपी चित्तौर गढ़ का राजा मन है। राघव शै
तथा माया में पड़ा हुआ अलाउद्दीन माया रूप है। इसी प्रकार यत्र
गूढ़ अर्थ भरे पड़े हैं। अनेक दोहों का अर्थ दुहरा है। सिंहल के बा
आदि के वर्णन में भी बीच-बीच में पारमार्थिक झलक प्रकट हो ग
पर कथानक की यह आध्यात्मिक अभिव्यंजना सर्वत्र सफलतापूर्वक
नहीं पाई है।

**प्रबन्ध कल्पना:—**

घटनाओं को आदर्श परिणाम तक पहुँचाने की ओर दृष्टि न रख
जायसी ने यथार्थवादी स्वरूप ही प्रस्तुत किया है। जैसा संसार में उ
देखा, वैसा ही अच्छा-बुरा चित्रित कर दिया है।

जायसी ने कथानक में घटनाओं की सम्बद्ध शृंखला और स्वभ
क्रम रखा है; हृदय को स्पर्श करने वाले प्रसंगों को कलात्मक ढंग से
किया है। इतिवृत्तात्मकता का निर्वाह इस ढंग से किया है कि म
जीवन की अनेक ऐसी दिशाएँ आ जाती हैं, जिनमें भिन्न-भिन्न भाव
अभिव्यंजना हो पाई है। इन रसात्मक वर्णनों में ही उनकी प्रतिष्ठा
शुक्ल जी के मतानुसार, पद्मनी और हीरामन तोते की कहानी
मार्मिक स्थलों से परिपूर्ण है। इसमें प्रेम, वियोग, माता की ममता,
का कष्ट, विपत्ति, आनन्दोत्सव, युद्ध, जय-पराजय आदि के साथ
विश्वासघात, बैर छल, स्वामि-भक्ति, पातिव्रत्य, वीरता आदि क
विधान है। पर "पद्मावत" शृंगार रस प्रधान प्रबन्ध काव्य है।
घटना चक्र में जीवन दशाओं और पारस्परिक सम्बन्धों की एक
नहीं है। जायसी का लक्ष्य प्रेम-पंथ का निरूपण है।

सम्बन्ध निर्वाह:—

जायसी ने अधिकारिक एवं प्रासंगिक कथाओं का योग बड़ी उत्तमता से किया है। उनका सम्बन्ध निर्वाह उत्तम है। एक प्रसंग का दूसरे से गढ़ा हुआ सम्बन्ध है। हीरामन तोता खरीदने वाले ब्राह्मण की कथा, राघव चेतन का हाल, बादल का प्रसंग जैसी प्रासंगिक कथाओं का मूल कथावस्तु पर पूरा प्रभाव है। अधिकारिक कथावस्तु में वस्तु के आदि, मध्य, और अन्त तीनों स्पष्ट हैं। पद्मावती के जन्म से रत्नसेन के सिंहलगढ़ घिरने तक कथा-प्रवाह का आदि, विवाह से लेकर सिंहल द्वीप के प्रस्थान तक मध्य और राघव चेतन के देश निर्वासन से पद्मनी के सती होने तक वस्तु का अन्त है। आदि अन्त की सब घटनाएँ विवाह की ओर उन्मुख हैं।

वस्तु-वर्णन :—

वस्तु-वर्णन के लिए जायसी ने उपयुक्त अवसरों को चुना है। उनका वर्णन प्राचीन पद्धति पर होते हुए भी भावपूर्ण है। सिंहल द्वीप वर्णन के अन्तर्गत बगीचे, सरोवरों, कुओं, बावलियों, पक्षियों, नगर, हाट, गढ़, राजद्वार और हाथी घोड़ों का सुन्दर वर्णन है। अमराइयों की शीतलता भी प्रकट की गई है। सिंहल के पनघट वर्णन में नाना प्रकार, रुचि तथा प्रकृति की नारियों का वर्णन मनोवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि से किया गया है। बाजार के वर्णन में हिन्दू हाट की झलक मिल जाती है, नगर की सुख-समृद्धि चित्रित की गई है।

जलक्रीड़ा वर्णन में नारियों के कौमार्य तथा स्वाभाविक उल्लास स्वच्छन्दता का उत्तम वर्णन है। यात्रा वर्णन में वह सौंदर्य नहीं आ पाया है। चित्तौर से कंलिंग तक रास्ते के जो भिन्न-भिन्न वन, पर्वत, नदी, निर्झर, ग्राम, नगर तथा भिन्न-भिन्न आकृतियों के पुरुषों के वर्णन की जायसी कोई आवश्यकता नहीं समझते। प्राकृतिक दृश्यों में उनका हृदय नहीं रमा है। प्रायः प्रकृति के नाना रूपों में उन्होंने ब्रह्म की सत्ता को देखा है। जैसे—

"नयन जो देखा कमल भा, निरमल नीर शरीर।
हँसत जो देखा हँस भा, दसन ज्योति नग हीर॥

जायसी सूर्य एवं चन्द्र में ब्रह्म की ज्योति का प्रकाश देखते हैं—

"अनुधति ! तू निसि अर निसि माहाँ ! हौं दिनअर जेहि के तू छाहाँ ।
चाँदहि कहाँ जोति औ कारा, सुरुज के जोति चाँद निरमरा ॥"

प्रकृति ब्रह्म के विरह में तड़पती है । आध्यात्मिक दृष्टि से जायसी का विरह वर्णन बहुमूल्य है । प्रकृति की निरवलम्बता का एक उदाहरण देखिए—

"आता पवन बिछोह कर, पात परा बेकरार ।
तरिवर तजा जो चूरि कै, लागे केहि के डार ॥"

जायसी की एक विशेषता उनका समुद्र वर्णन है । केवल उन्हीं ने समुद्र का सांगोपांग वर्णन किया है । शुक्ल जी के शब्दों में, "यद्यपि जायसी ने समुद्र का वर्णन किया है, तथापि पुराणों के "सात समुद्र" के अनुकरण के कारण समुद्र का प्रकृति वर्णन वैसा नहीं हो पाया है । क्षीर, दधि और सुरा के कारण समुद्र के प्राकृतिक स्वरूप का अच्छा प्रत्यक्षीकरण न हो सका । आरंभ के कुछ पद्य अवश्य समुद्र की महत्ता और भीषणता के चित्र खड़े करते हैं । समुद्र के जीव जन्तुओं का काल्पनिक एवं अत्युक्तिपूर्ण वर्णन है । सात समुद्रों में से केवल दो ही का उल्लेख है ।"

महाकाव्य के अन्तर्गत जिन विभिन्न वस्तुओं के वर्णन का विधान है, लगभग उन सभी का विस्तृत वर्णन इस महाकाव्य में पाया जाता है । एक ओर आनन्दोत्सवों, सजावट, राजा के ऐश्वर्य और प्रजा के उत्साह का वर्णन है, तो दूसरी ओर उतनी ही बारीकी से कवि ने सेनाओं, युद्धों, तथा चित्तौर पर अलाउद्दीन का विस्तृत वर्णन किया है । सृष्टि के विप्लव जैसे दृश्य हमारे सम्मुख मूर्तिमान हो उठे हैं । घमासान युद्ध वर्णन में, शस्त्रों की चमक, झनकार, हाथियों की रेल पेल, सिर धड़ का गिरना, भीषणता सभी कुछ जैसे साकार कर दिया गया है । कहीं जायसी अनेक व्यंजनों, भोजन, पकवानों, तरकारियों, मिठाइयों से युक्त बादशाह के भोजन का वर्णन करते हैं, तो कहीं चित्तौर गढ़ का सांगोपांग वर्णन चित्र को मोह लेता है । हिन्दुओं की मान प्रतिष्ठा, गौरव और अतीतकालीन ऐश्वर्य के अनुकूल ही चित्तौर चित्रित किया गया है ।

रूप सौंदर्य वर्णन में उन्होंने कमाल किया है । सम्पूर्ण कथा का आधार

पद्मावती का अगाध रूप-सौंदर्य ही है। हीरामन तोता रत्नसेन के समान तथा राघव चेतन अलाउद्दीन के सामने पद्मावती की सुन्दरता का सविस्तार वर्णन करता है। यह वर्णन नखशिख की प्रणाली पर तथा सादृश्य-मूलक है। इन सौंदर्य वर्णन में सृष्टि-व्यापी प्रभाव की कल्पना पाई जाती है जैसे—

"सरवर तीर पदमिनी आई। खौंपा छोरि केस मुकलाई
ओनई घटा, परी जग छाहाँ।
बेनी छोरि झार जो बारा। सरग पतार होई अँधियारा॥"

दाँतों के वर्णन में भी अनन्त ज्योति की झलक है। संक्षेप में, नाना वर्णनों की दृष्टि से यह महाकाव्य अतुलन बन पड़ा है।

भाव-व्यंजना :—

इस महाकाव्य का मुख्य रस श्रृंगार है। जायसी ने इस रस की निष्पत्ति में परम्परागत विभाव अनुभाव और संचारी को ठूँस-ठूँस कर नहीं रखा है, भाव उत्कर्ष जितने से सध गया है, उन्हीं विभाव अनुभावों का प्रयोजन रखा है। अतः संयोग के अन्तर्गत इसमें स्तम्भ, स्वेद, रोमांच भाव नहीं मिलते, वियोग में अश्रुओं का आधिक्य है। विवाह के पश्चात पद्मावती अपनी कामदशा का वर्णन सीधे सादे किन्तु भावगर्भित शब्दों में किया है। वात्सल्य के स्निग्ध उद्गार भी दो एक स्थानों पर हैं। भाव के स्वाभाविक प्रेम की गम्भीर व्यंजना देखिए—

"गदवर नैन आए भरि आँसू। छाँड़ब यह सिंघल कैलासू॥
छाँड़िउँ नैहर, चलिउँ बिछोई। एहि रे दिवस कहँ हौं तब रोई॥

दूती और पद्मा के सम्वाद में पातिव्रत्य भावों की उत्तम व्याख्या है। शोक भावों की व्यंजना दो स्थानों पर मुख्य रूप में पाई जाती है—रत्नसेन के जोगी होने पर और उनके मारे जाने पर। इन दोनों ही स्थानों पर करुण रस की धारा प्रवाहित की गई है।

रौद्र एवं वीर रस के भी अच्छे उदाहरण मिलते हैं। ज्योंही रत्नसेन को अलाउद्दीन की पाप मय पत्र (चिट्ठी) मिलती है, वह क्रोध से उन्मत्त हो उठता है। उसके मुँह से निकले हुए उग्र वचन रौद्र के उदाहरण हैं।

कोमल भावों के कवि होने के कारण रौद्र का इतना अच्छा चित्रण नहीं हो सका है। वीर रस के वर्णन अच्छे हैं। इस रस के चित्रण के लिए भी कवि को पर्याप्त अवसर प्राप्त हो गए हैं। वीर रस में उत्साह की व्यंजना गोरा बादल के प्रसंग में मिलती है। पद्मनी के विलाप में भी क्षात्र तेज का आभास देखिए :—

"जो लगि जियहिं न भागहिं दोऊ। स्वामि जियत कित जोगिनि होऊ।
उए अगस्त हस्ति जब गाजा। नीर छूटे घर आइहिं राजा॥
बरषा गए अगस्त के दीठी। परै पलानि तुरंगन पीठी॥
बेधों राहु छोड़ा वहुँ सूरू। रहै न दुख कर मूल अंकूरू॥

केवल हास्य रस का "पद्मावत" में अभाव है। कदाचित वे ऐसी कोई परिस्थिति न निकाल सके जिसमें इसका वर्णन कर सकते। फिर भी रस-व्यंजना की दृष्टि से यह महाकाव्य सफल है।

शैली :—

"पद्मावत" में वे शास्त्रीय गुण नहीं मिलते जो प्राचीन पद्धति के महाकाव्यों में पाये जाते हैं। यह रूढ़िवादी महाकाव्य न होकर अपने ढंग का सर्वथा नवीन है। यह फारसी साहित्य की मसनवी शैली पर लिखा गया है। इसमें ऐकेश्वरवाद और अद्वैतवाद, ऐतिहासिक आख्यान एवं लोक-पक्ष, भावना तथा आध्यात्म का कलात्मक सम्मिश्रण है। प्रकृति को उद्दीपन अथवा उपमान के रूप में ग्रहण करने की प्रवृत्ति का भी प्रयोग है।

छन्द में दोहे और चौपाइयों का प्रयोग है। इस शैली का अनुकरण तुलसी ने "मानस" में, और श्री द्वारिकाप्रसाद मिश्र ने "कृष्णायन" में किया है। जायसी ने सादृश्य मूलक अलंकारों का अधिक प्रयोग किया है। कथानक व्यंग्यगर्भित है।

शुक्ल जी के मत में, "जायसी ने सादृश्य-मूलक अलंकारों का ही आश्रय अधिक लिया है। रसात्मक प्रसंगों में अधिकांश भाव के अनुरूप ही अनुरंजनकारी अप्रस्तुत वस्तुओं की योजना हुई है, परम्परानुगत होने के कारण उनमें कवि-समय सिद्ध उपमान ही अधिक मिलते हैं, सादृश्य का आरोप करने में फारसी के जोर पर वे एक आध जगह और आगे भी

बढ़ गए हैं। भारतीय काव्य-पद्धति में उपमान चाहे उदासीन हों, पर भाव के विरोधी वे कभी नहीं होते।"

अन्य अलंकारों में उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा का प्रचुरता से प्रयोग है। हेतूत्प्रेक्षा उन्हें बड़ी प्रिय थी। वस्तूत्प्रेक्षा और फिलोत्प्रेक्षा के भी उत्तम उदाहरण मिलते हैं। गूढ़ और अर्थगर्भित योजना "तद्गुण" भी पर्याप्त है। जायसी का कलापक्ष भी उनके भावपक्ष की भांति सफल रहा है।

चरित्र-चित्रण :—

जायसी का ध्यान स्वभाव चित्रण की ओर न था। पद्मावत में न व्यक्ति, न वर्ग किसी का भी निगूढ़तम अध्ययन या सूक्ष्म निरीक्षण नहीं पाया जाता। उन्होंने अपने पात्रों को मनोवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि से नहीं निहारा है, ऊपरी दृष्टि से मानवी स्वभाव का चित्रण किया है। पद्मावती, नागमती या रत्नसेन किसी की भी व्यक्तिगत विशेषताएँ स्पष्टतः अंकित नहीं की गई हैं।

नायक रत्नसेन को प्रधान अध्ययन का विषय बनाया गया है। नारी पात्रों में पद्मावती, नागमती तथा गौण पात्रों में अलाउद्दीन, गोरा-बादल इत्यादि हैं। रत्नसेन बुद्धि अदूरदर्शी, अतत्पर पर जातिगत राजपूती प्रतिकार वासना से पूर्ण हैं। उनकी विशेषता आदर्श प्रेम है, जिसमें आवेग है। प्रेम के साधन काल में उनका साहस, कष्ट-सहिष्णुता, नम्रता, कोमलता, त्याग आदि गुण स्पष्ट हो जाते हैं; तथा दुराग्रह और चोरी दुर्गुण दिखाई देते हैं। ये प्रेम जन्य हैं। वैसे वह स्वाभिमानी वीर योद्धा है।

नायिका पद्मावती एक आदर्श चरित्र सुन्दर शीलगुण सम्पन्न, व्यवहारकुशल चतुर, पतिव्रता, साध्वी स्त्री है। चित्तौर आने से पूर्व वह सच्ची प्रेमिका के रूप में चित्रित की गई है। उसकी दूरदर्शिता और बुद्धिमत्ता का परिचय राघवचेतन को दान द्वारा संतुष्ट करने में दिया गया है। सौत के प्रति ईर्ष्या का भाव भी उसमें है। नागमती रूपगर्विता है। वियोग दशा में उसका गूढ़ और गंभीर प्रेम प्रकट होता है। राघवचेतन एक वर्ग

विशेष का प्रतिनिधि है। गोरा बादल क्षत्रिय वीरता के उत्तम उदाहरण हैं। दोनों में खरापन, सचाई, दूरदर्शिता और आत्म-सम्मान है। अलाउद्दीन बली होते हुए भी अभिमानी और वासना लोलुप है। रूपलोभ में वह किसी की पत्नी का मान-अपमान तक नहीं देख पाता। सामान्यतः विभिन्न चरित्रों की गहराई और परिस्थितियों का सूक्ष्म निरीक्षण बहुत कम पाया जाता है।*

---

* इसी विषय पर अध्ययन के लिए सामग्री, जिससे प्रस्तुत लेख सहायता ली गई है :—

१—शुक्ल : "जायसी ग्रन्थावली"; डा० रामरतन भटनागर 'जाय डा० रामकुमार वर्मा—"आलोचनात्मक इतिहास"; प्रो० चन्द्रकु "पद्मावत में प्रकृति-चित्रण" सरस्वती संवाद वर्ष १, अंक ११।

# कवि सम्राट् तुलसीकृत "रामचरितमानस" हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य

महाकाव्यकार गोस्वामी तुलसीदास हिन्दी के सर्व शिरोमणि कवि हैं, तो उनका विश्रुत महाकाव्य "रामचरितमानस" हिन्दी साहित्य का सर्वगुण सम्पन्न काव्य ग्रन्थ है। इसकी टक्कर का महाकाव्य हिन्दी साहित्य में दूसरा नहीं है। इसे हम विश्व के अन्य महाकाव्यों जैसे होमर का "ईलियड", वर्जिल का "ईनियड"; फिरदौसी का "शाहनामा"; और मिल्टन का "पैराडाइज़ लौस्ट" के समकक्ष सुगमता से रख सकते हैं। कारण, यह समय और देश की परिधि पार कर सर्व युगीन सार्वभौमिक महाकाव्य है, जिसमें चरित्र-चित्रण, साहित्य, दर्शन और काव्य सभी का उच्चतम सौन्दर्य विद्यमान है।

महाकाव्य तुलसीदास ने आत्म तुष्टि के लिए भक्ति-भावना का अपूर्व दिग्दर्शन कराते हुए मानव-जीवन एवं समाज की एक व्यापक व्याख्या इस महाकाव्य में की है। राम उनके आराध्य हैं। उनकी कथा को लेकर पृष्ठभूमि में मानव के निगूढ़तम भावों की व्यंजना करते हुए सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि से तुलसी ने मानव समाज का सर्वाङ्गीण चित्र अंकित किया है। मानव-जीवन का जैसा सूक्ष्म निरीक्षण इस कवि ने किया है दूसरा न कर सका। प्रेम, क्रोध, मद, लोभ, मोह इत्यादि सब भावों का ऐसा व्यापक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है, जो इतना समय व्यतीत हो जाने पर आज भी बिल्कुल नया और प्रमाणिक है।

प्रबन्ध निर्माण :—तुलसी के "मानस" की सबसे बड़ी सफलता उसमें संबद्ध घटनाओं की शृङ्खला का स्वाभाविक क्रम है। "मानस"

कथानक में तुलसी को मानव-जीवन तथा समाज की नाना २ दशा
दृष्टिकोण, पारस्परिक सम्बन्ध, समाज के सभी वर्गों के पात्र तथा वर्ग
की अनेक रूपता प्राप्त हो गई। इन मानव-दशाओं का विस्तृत वर्ण
सम्बन्धों का रसपूर्ण प्रदर्शन तथा विभिन्न प्रकार के चरित्रों का विश्लेष
तुलसीदास जी ने बड़ी कुशलता और तन्मयता से किया है। इसमें विस्त
के साथ-साथ व्यापकत्व भी है।

मनुष्य की बाल्यावस्था से वृद्धत्व तक की सब जीवन और भाव
दशाओं को इस ग्रन्थ ने परिवेष्टित कर लिया है। राम, सीता, दशर
कौशल्या आदि के दुःख-सुखों, जीवन के उतार-चढ़ाव में हमें मनुष्य
सब मनोवृत्तियों का परिचय प्राप्त हो जाता है। "मानस" के कथानक
विकास शृङ्खलाबद्ध है। अधिकारिक एवं प्रासंगिक सब कथाएँ अच्छी त
सम्बन्धित हैं।

"गोस्वामी जी की प्रबन्ध-पटुता का परिचय एक इसी बात से ि
सकता है कि "रामचरितमानस" की कथा को तीन व्यक्ति तीन श्रोता
से कह रहे हैं। गोसाईं जी अन्त तक इस बात को नहीं भूले हैं और सम
समय पर पाठक को इस बात की याद मिलती रहती है कि गरु
भुशुण्डि कथित कथा को शिव पार्वती से और शिव कथित कथा को य
वल्क्य भारद्वाज से कह रहे हैं—कथा का रस यदि बिगड़ता है तो गो
जी बार-बार यह याद दिलाने से कि राम परब्रह्म परमात्मा थे और
स्वयं रामचन्द्र के मुँह से यह आभास दिला देते हैं कि मैं परब्रह्म हूँ। र
चरित की व्यापकता में उन्होंने अपनी कला के सम्पूर्ण कौशल तथा 
पर्यवेक्षण-शक्ति का परिचय दिया है।"*

तुलसी की एक विशेषता यह है कि वस्तु वर्णन में इतिवृत्तात्मक 
को भी उन्होंने सरस बना दिया है। कथानक का तारतम्य कहीं 
नहीं पाता। घटनाओं से सम्बन्धित दृश्यों का ही उन्होंने वर्णन किया
फजूल के वर्णन नहीं हैं। जिस-जिस विषय को प्रतिपादन का विषय ब

---

* डा० श्यामसुन्दरदास "त्रिधारा" पृष्ठ ३६।

गया है, उसे मूल कथानक से ऐसा जोड़ दिया है कि भारस्वरूप, या ऊपर से चिपका हुआ नहीं प्रतीत होता। प्रत्येक पंक्ति का उसके संदर्भ में अपना-अपना निजी महत्त्व है। उसे उस स्थान से निकाल लेने पर उसका अर्थ एवं सौंदर्य नष्ट हो जाता है। दृश्यों के वर्णन में भी कवि निरन्तर सूक्ष्म बिम्ब ग्रहण कराता चलता है। कथानक में मार्मिक स्थल ( जैसे— रामवन गमन, दशरथ मरण, सीता हरण, भरत मिलाप इत्यादि ) चुनने में तुलसी को सर्वाधिक सफलता प्राप्त हुई है।

**वस्तु वर्णन :—**

इसके अन्तर्गत राजकीय उत्सव, युद्ध, यात्रा, संवाद, उपवन, वाटिकाओं के बड़े मार्मिक वर्णन उपलब्ध हैं। बाह्य दृश्य चित्रण में उन्होंने प्राचीन संस्कृत कवियों जैसा सूक्ष्म निरीक्षण दिखाया है। इससे उनके हृदय का स्वाभाविक विस्तार प्रकट होता है और उन्हें हिन्दी के कवियों में सब से ऊँचे ले जाता है। गोस्वामी जी के अधिकांश वर्णन शब्द सौंदर्य प्रधान हैं, जिनमें नाना प्राकृतिक वस्तुओं को गिना दिया गया है; जैसे—

"झरना झरहिं सुधा सम बारी। त्रिविध ताप-हर त्रिविध बियारी॥
विटप-बेलि-तृन अनगित जाती। फल-प्रसून-पल्लव बहु भांति॥
सुन्दर सिला सुखद तरु-छाहीं। जाइ बरनि बन-छवि केहि पाहीं॥"

कहीं-कहीं स्वयं मौलिक ढंग से वर्णन किया गया है। उपमा, उत्प्रेक्षा, दृष्टान्त आदि के साथ जुड़े हुए अनेक सुन्दर वर्णन हैं। उनकी एक विशेषता यह है कि उन्होंने प्रकृति-चित्रण में देश का ध्यान रखा है। चित्रकूट वर्णन में उन्होंने उन्हीं फलों का उल्लेख किया है, जो वहाँ पाये जाते हैं, एला, लवंग, पुंगीफल का उल्लेख वहाँ नहीं है। मनुष्य की मुद्रा के वर्णन तथा खड़े होने, लक्ष्य साधने, आखेट करने, युद्धरत व्यक्तियों का सहज स्वाभाविक वर्णन वे कर सके हैं।

शुक्ल जी ने उनके दृश्य वर्णन के विषय में सत्य ही कहा है, "वे ऐसे दृश्य सामने नहीं लाये हैं, जो भद्दे या कुरुचिपूर्ण कहे जा सकें। उदाहरण के लिए भोजन का दृश्य ले लीजिए। "मानस" में ऐसे दो अवसर आए

हैं—राम की बाल लीला तथा विवाह के प्रसंग में पर भोजन के दृश्य का विस्तार नहीं है। दशरथ भोजन कर रहे हैं; इतने में—

"धूसर धूरि भरे तनु आए। भूपति बिहँसि गोद बैठाए॥
भोजन करत चपल चित इत-उत अवसरु पाई॥
भाजि चले किलकत मुख दधि-ओदन लपटाई॥

व्यर्थ के वर्णनों से बच कर तुलसी ने अपने गौरव एवं गांभीर्य की रक्षा की है।

भाव व्यंजना—

रामचरितमानस में अनेक स्थल ऐसे भावुकता से पूर्ण हैं कि तुलसी की लेखनी इनकी व्यंजना में जैसे थिरक उठी है। अतिरंजित स्वरूप से बच कर उन्होंने वास्तविक जीवन-दशाओं के मार्मिक पक्षों का चित्रण किया है। वे काल्पनिक से वैचित्र्य-विधान-दशाओं में नहीं फँसे हैं। उन्होंने भगवान् राम को ऐसी भावभूमि पर खड़ा कर दिया है, कि पढ़कर हमारे हृदय के मर्म पर चोट लगती है। वे पाठकों को लोक-पक्ष में प्रतिष्ठित नाना कर्त्तव्यों में लीन रामत्व में लीन करना चाहते थे।

शुक्ल जी के अनुसार, "मानस के काव्य-पक्ष का तो कहना ही क्या है। उसके भीतर मनुष्य जीवन में साधारणतः आने वाली प्रत्येक दशा और प्रत्येक परिस्थिति का सन्निवेस कथा उस दशा और परिस्थिति का अत्यन्त स्वभाविक, मर्मस्पर्शी और सर्व ग्राह्य चित्रण है। जैसा लोकाभिराम राम का चरित था, वैसा ही प्रसादमयी गभीर गिरा उसके लिए मिली। "मानस" हिन्दू जीवन और हिन्दू संस्कृति का सहारा हो गया। इसमें तुलसी धर्मोपदेष्टा और नीतिकार के रूप में आते हैं लेकिन नीरस पथ भी रसवान हो गए है।"

अयोध्यापुरी की बाल-लीला, नखशिख, जनकवाटिकायें, प्रेमोत्पत्ति रामवनगमन, दशरथ जी मृत्यु, सीताहरण, भरत-मिलाप इत्यादि मार्मिक स्थल बड़े सुकुमार हैं। कई स्थानों पर करुणा की अजस्त्र धारा बहाई गई है। जनक वाटिका में प्रेम प्रसंग बड़ा रुचिर मर्य्यादापूर्ण है। सीता भी राम को मन ही मन अपना पति बनाने को उत्सुक है। वह उनके ध्यान में

मग्न होती हैं—"पितुपन सुमिरि बहुरि मन छोभा"। राम के मन में भी ललक है, पर लोक मर्य्यादा उन्हें ध्यान रहता है।

(तुलसी की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने अपने आपको मानव जीवन की प्रत्येक मनः स्थिति में डालकर उसके अनुरूप भाव का अनुभव और व्यंजना की है।) "मानस" में मर्मस्पर्शी अंशों की सर्वांगपूर्ण भावुकता मिलती है। अधिक से अधिक हृदयों से उनका रागात्मक सम्बन्ध है। "सौंदर्य है तो प्रफुल्लता, शक्ति है तो प्रगति, शील है तो हर्ष पुलक, गुण है तो आदर, पाप है तो घृणा, अत्याचार है तो क्रोध, अलौकिकता है तो विस्मय, पाखण्ड है तो कुढ़न, शोक है तो करुणा, आनदोत्सव है तो उल्लास, उपकार है तो कृतज्ञता, महत्व है तो तो दीनता--तुलसीदास जी के हृदय में बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव से विद्यमान हैं।"

शृंगार रस में मर्य्यादा का सदैव ध्यान रखा गया है। पति-पत्नी जीवन में भी उन्हें लोक मर्य्यादा का पूर्ण ध्यान रहा है। राम और सीता के प्रथम मिलन के भाव सौंदर्य का निरूपण देखिए—

"कंकन किंकन नूपुर धुनि सुनि, कहत लखन मन राम हृदय गुनि।
तात जनकतनया यह सोई, धनुष यज्ञ जिहि कारन होई।।
रूप अलौकिक अनुपम सोभा, सहज पुनीत मोरमन लोभा।।
मोहि प्रतीत अतिसय मन केरी, जेहि सपनेहु पर नारि न हेरी।।
फरकहिं सुभग अंग सुनु भ्राता, सो यह कारन जानि विधाता।।

करुण हृदय का यह उदाहरण हिन्दी साहित्य में अपूर्व है। राम का राज्याभिषेक होने को था कि अनायास ही बनगमन की तैयारी हो जाती है। आनन्द से हृदय करुणा में बदल जाता है। राम सीता को रोकते हैं पर सीता उनके साथ जाने को प्रस्तुत है—

"बन-दुख नाथ कहे बहुतेरे। भय बिसाद परिताप घनेरे।।
प्रभु वियोग-लवलेस-समाना। सब मिलि होहिं न कृपानिधाना।
कुस-किसलय-साथरी सुहाई। प्रभु संग मंजु मनोज-तुराई।।
कंद-मूल-फल अमिय-अहारू। अवध सोधसत सरिस पहारू।।

मोहिं मग चलत न होइहि हारी। छिनु छिनु चरन सरोज निहारी॥
पाँय पखारिं बैठ तरु-छाहीं। करिहौं बाउ मुदित मन माहीं॥
बार बार मृदु मूरति जोही। लागिहि ताति बयारि न मोही॥

प्रेम के प्रभाव से जंगल में मंगल हो जाता है। इस आनन्द एवं उत्साह का एक भावपूर्ण चित्र देखिये—

"नाह नेह नित बढ़त बिलोकी। हरषित रहति दिवस जिमि कोकी॥
सिय-मन राम-चरन अनुरागा। अवध-सहस-सम बन प्रिय लागा॥
परन कुटी प्रिय प्रियतम संगा। प्रिय परिवार कुरंग-बिहंगा॥
सासु-ससुर-सम मुनि तिय मुनिवर। असन अमिय-सम कंद मूल फर॥

हास्य का एक उत्तम उदाहरण नारद मोह में मिलता है—

"काहु न लखा सो चरित बिसेखा। सो सरूप नृप कन्या देखा॥
मर्कट बदन भयंकर देही। देखत हृदय क्रोध भा तेही॥
जेहि दिसि बैठे नारद फूली। सो दिसि तेहि न बिलोकी भूली॥
पुनि पुनि मुनि उकसहिं अकुलाहीं। देखि दसा हरगन मुसकाहीं॥

रौद्ररस का उदाहरण देखिए—

"मासे लखन कुटिल भइँ भौंहें। रद-पट फरकत नयन रिसौंहें।
रघुवंसिन महँ जहँ कोउ होई। तेहि समाज अस कहै न कोई॥

धनुष चढ़ाने के लिए राम और लक्ष्मण का उत्साह और धनुभंग की प्रचंडता का वर्णन वीरोल्लासपूर्ण है। लक्ष्मण की उत्तेजना देखिए—

"सुनहु भानु-कुल-कमल-भानु! जौ अब अनुशासन पावौं।
का बापुरो पिनाकु? मेलि गुन मंदर-मेरु नवावौं॥
देखौ निज किंकर को कौतुक, क्यों को दंड चढ़ावौं॥
लै धावौं भंजौ मृनाल ज्यौं तौ प्रभु अनुज कहावौं॥

प्रकृति के असीम सौंदर्य को कवि-सम्राट् तुलसी बड़ी सफलता से शब्दों में उडेल सके हैं प्रकृति के वर्णनों जहाँ परम्परा का अनुसरण किया है, तहां स्वयं पर्यवेक्षण कर कुछ उत्तम चित्र भी खींचें है। सीता के वियोग में विलाप करते हुए प्रकृति को चित्रित देखिए—

"खंजन, सुक, कपोत मृग, मीना। मधुप-निकर कोकिला प्रवीना॥
कुन्दकली, दाड़िम, दामिनी। कमल, शरद, ससि अहि भामिनी॥
वरुन-पास, मनोज-धनु, हंसा। गज, केहरि, निज सुनत प्रसंसा॥
श्रीफल, कनक, कदलि, हरषाहि। नेकु न संक सकुच मन माहीं॥

प्राकृतिक दृश्यों सांगोपांग चित्रण में यथातथ्य चित्रण की जो क्षमता महाकवि तुलसी में दिखाई देती है, अन्यत्र दुर्लभ है—

"लषनु दीख पय उतर करारा। चहुँ दिसि फिरेउ धनुष जिमि नारा॥
नदी पनच सर सम दम दाना। सकल कलुष कलि साउज नाना॥
चित्रकूट जनु अचल अहेरी। चुकइ न घात मार मुठ भेरी॥

पंपा सरोवर पर जल पीते हुए मृगों का चित्र दो पंक्तियों में देखिए—
"जँह तहँ पियहिं विविध मृग नीरा। जनु उदार गृह जाचक भीरा।

वास्तव में भाव व्यंजना क्षेत्र में तुलसी बहुत सफल रहे हैं। "मानस" में सभी रसों और मनुष्य की मनः स्थितियों का यथातथ्य चित्रण हुआ हुआ है। भावों का लोक संग्रह और मर्यादावाद से सामंजस्य करा उच्च आदर्श उपस्थित किए गए हैं।

चरित्रचित्रण—

बाह्य प्रकृति की भाँति मनुष्य की आन्तरिक वृत्तियां-भावनाओं, आकांक्षाओं एवं विचारों की सूक्ष्म जानकारी तुलसी के चरित्र-चित्रण में पाई जाती हैं उन्होंने दो प्रकार के पात्र चित्रित किए हैं—आदर्श और सामान्य। आदर्श में सात्विक और तामसिक प्रवृत्तियों के मनुष्य आते हैं और सामान्य वर्ग में राजस वाले। इस दृष्टि से मर्य्यादापुरुषोत्तम राम, जगजनया सीता, कर्त्तव्य परायण भरत और सेवक-प्रवर हनुमान सात्विक आदर्श पात्र हैं, रावण तामस आदर्श है। दशरथ, लक्ष्मण, विभीषण, सुग्रीव, कैकयी सामन्य चित्रण में रखे जा सकते हैं।

राम इस महाकाव्य के नायक, सर्व गुण आगार हैं, उनमें शक्ति, सौंदर्य, धैर्य, मार्दव, एक पत्नीव्रत, सात्विक प्रेम, कर्त्तव्य परायणता, शरणागत की रक्षा, शान्ति, शील आदि उत्तम गुण हैं। वे कैकयी से सौम्य व्यवहार करते हैं। लक्ष्मण राम के साथ प्रत्येक परिस्थिति में रहते हैं।

राम-लक्ष्मण के चरित्रों के अन्तर्गत कवि को मानव-जीवन की भिन्न-भिन्न परिस्थितियाँ प्राप्त हो जाती हैं, अतः सब प्रकार के मनोविकारों का सुचारू मनोवैज्ञानिक चित्रण उपलब्ध हो जाता है। भरत का चित्र सबसे उज्जवल, निर्मल एवं निर्दोष अंकित किया गया है। लक्ष्मण क्रोधी हैं और बुरे भाव का आरोप वे दूसरे पर जल्दी ही कर लेते हैं। अवध-वासियों को चित्रकुट में आते देखकर वे भरत पर सन्देह करते हैं—

कुटिल कुबंध कुअवसर ताकी। जानि राम बनवास एकाकी॥
करि कुमंत्र मन साजि समाजु। आए करइ अकंटक राजू॥

तुलसी के चरित्र चित्रण में मनोवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि पाई जाती है। प्रत्येक पात्र के हृदय का मनोवैज्ञानिक चित्र हमें मिल जाता है। राम, लक्ष्मण और भरत सब की चारित्रक विशेषतायें स्पष्ट अंकित की गई हैं।

"मनुष्य-स्वभाव से उनका सर्वांगीण परिचय था। भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में पड़कर मन की क्या दशा होती है, इसको वे भली-भांति जानते थे। इसी से उनका चरित्र चित्रण बहुत पूर्ण और दोष-रहित हुआ है। "रामचरित" में प्रायः सभी प्रकार के चरित्र अंकन में उन्होंने अपनी सिद्धहस्तता दिखाई है......जिस पात्र का जो स्वभाव देना उन्हें अभीष्ट है, उसे उन्होंने कोमल वय में बीज-रूप में दिखलाकर आगे बढ़ते हुए भिन्न २ परिस्थितियों में उसका नैसर्गिक विकास दिखाया है।[8]

दशरथ के चरित्र में सत्य संधता और पुत्र वत्सलता, कैकयी में कुटिलता, कौशिल्या में असमंजस, रावण में भौतिकता और राक्षसत्व, हनुमान में शक्ति और सेवकत्व- सुग्रीव में भक्ति, भरत में निर्मलता, निःस्पृहता और धर्म-प्रवणता और परशुराम में रोष-इत्यादि मनोभावों और चारित्रक गुणों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण तुलसी सफलता से प्रस्तुत कर सके हैं। विरोधी भावों के संघर्ष ( Mental conflict ) के चित्रण में नाटकीयता आ गई है। उदाहरण स्वरूप कौशल्या के मन में बदली हुई परिस्थिति से उत्पन्न अन्तर्संघर्ष देखिए —

[8] डा० श्याम सुन्दर दास "गोसाईं जी कला"

"राखि न सकहि न कहि सक जाहू, दुहुँ भाँति उर दारून दाहू।
धरम सनेह उभय मति घेरी, भई गति साँप छछूँदर केरी॥
राखऊँ सुतहिं करऊँ अनुरोधू, धरम जाई अरु बंधु-विरोधू।
कहौं जन बन तो बड़ हानी, सकट सोच तिलक भई रानी॥"

चरित्र चित्रण में नाटक जैसे बोलते सजीव चित्र खींच देना तुलसी का ही काम है दशरथ जी का वह चित्र देखिये जिसमें कैकयी की वर-याचना से उन पर वज्रपात सा हो जाता है। ऐसा वर्णन अभिनय कुशल नाटयकार ही कर सकता है—

"गयऊ सहमि कछु कहि नहिं आवा। जनु सचान बन झपटेउ लावा।
विवरण भयउ निपट महिपालू। दामिनी हनेहु मनहुँ तरु तालू॥
माथे हाथ मूँद दोऊ लोचन। तनु धरि सोचु लागू जन सोचन॥
मोर मनोरथ सुरतरू फूला। फलत फरिनि जनु हतेऊ समूला॥"

तुलसीदास जी ने इन चरित्रों के द्वारा लोक-संग्रहं एवं मर्य्यादावाद, सत्य की रक्षा और प्रतिज्ञा के पालन के उच्चतम आदर्श उपस्थिति किए हैं। राम के चरित्र में उनका भक्तिभाव प्रमुख है। मानव जीवन के कोने कोने तक उनकी पहुँच रही है। पात्रों के प्रत्यक्ष या विश्लेषणात्मक, परोक्ष या नाटकीय चारित्रक विश्लेषण में ये पूर्णतः सफल रहे हैं।

**शैली** :—

भावाभिव्यक्ति में तुलसी अपना सानी नहीं रखते। उनका भाषा पर पूर्ण अधिकार है। उनका कलापक्ष भी उतना ही निखरा हुआ है, जितना उज्ज्वल भावपक्ष है। अवधी और ब्रज काव्य-भाषा दोनों पर ही तुलसी का समान रूप से अधिकार है इसीलिए प्रत्येक भाव को अभिव्यक्त करने के लिए उन्हें उपयुक्त शब्द चयन प्राप्त हो जाता है। "मानस" अवधी में रचित महाकाव्य है, जिसमें पूरबी और पछाहीं का सम्मिश्रण है। वे कहीं-कहीं बड़ी मुहाविरेदार भाषा का प्रयोग कर सके हैं, लोकोक्तियों के प्रयोग भी यथास्थान किए गए हैं; वाक्य रचना की निर्दोषता पाई जाती है। कहीं भी शैथिल्य या फालतू के ठूँसे हुए शब्द नहीं हैं।

गोस्वामी जीं ने दोहे और चौपाइयों का बड़ा कलात्मक प्रयोग किया

है। सम्पूर्ण "मानस" दोहे और चौपाइयों में लिखा गया है। जायसी के अनुकरण पर महाकाव्य के अनुकूल दोहे-चौपाइयों का अनुक्रम बड़ा सुन्दर बन पड़ा है। क्लष्ट कल्पनाजन्य काव्य शैली नहीं है। इन चौपाइयों में गीतिकाव्य के भी गुण हैं। बाजे पर इन्हें ताल सुर से गाया जाता है।

अलंकार विधान में रमणीयता है। शुक्लजी के मत से गोस्वामीजी के अलंकारों की चार श्रेणियाँ हैं—(१) ये भावों की उत्कर्ष-व्यंजना में सहायक हैं (२) वस्तुओं के रूप ( सौंदर्य भीषणत्व आदि ) का अनुभव तीव्र करने में सहायक हैं (३) गुण का अनुभव तीव्र करने में सहायक है (४) क्रिया का अनुभव कराते हैं। तुलसी की प्रवन्ध कुशलता विलक्षण है, जिससे प्रकरण प्राप्त वस्तुएँ अलंकार सामग्री का काम देती हैं और कृत्रिमता नहीं आने पाती। गोस्वामीजी के अतिरिक्त हिन्दी में अन्य किसी कवि में वह प्रबन्ध पटुता, वस्तु वर्णन, भावव्यंजना, चरित्र चित्रण, भाषा-सौष्ठव, रस परिपाक एवं अलंकार योजना नहीं है जो एक सफल महाकाव्य का प्राण है।*

---

* जिन पुस्तकों से प्रस्तुत भाग में सहायता ली गई है, वे इस प्रव हैं। विद्यार्थियों को इनसे और सहायता मिल सकती है पं० रामचन्द्र : "तुलसीदास"; डा० रामकुमार वर्मा आलोचनात्मक इतिहास; डा० म प्रसाद-तुलसीदास; डा० श्यामसुन्दरदास—"त्रिधारा", बल्देव उपाध "तुलसीदर्शन"; रामनरेश त्रिपाठी तुलसी और उनकी कविता भाग १ गुलाबराय—"प्रबन्ध प्रभाकर"

# रीतिकालीन महाकाव्य

केशवदास कृत "रामचन्द्रिका" :—

महाकाव्यकार केशव की "रामचन्द्रिका" रीतिकाल का विशालकाय प्रबन्ध काव्य है। केशव अलंकारों की प्रधानता मानने वाले शास्त्रीय परम्परावादी चमत्कारी कवि थे। पांडित्य की दृष्टि से वे विद्वानों के सिर-मौर काव्यशास्त्र के ज्ञाता और अलंकार पिंगल के मर्मज्ञ थे। शब्द कौशल और चमत्कार प्रदर्शन में उन्होंने अपनी विलक्षण सूझबूझ का परिचय दिया है।

प्रबन्ध निर्वाह :—

"रामचन्द्रिका" में वाल्मीकि रामायण को आधार मान कर तुलसी-कृत "मानस" की कथा को ले लिया गया है। लेकिन कथानक में कुछ नवीनताएँ भी हैं जो केशव की मौलिकता की परिचायक हैं। उदाहरण स्वरूप, परशुराम जी बारात लौटते समय राम से मिले थे इसलिए लक्ष्मण के शक्ति रावण द्वारा लगी, मेघनाथ द्वारा नहीं। ताड़का वध में होने वाली बातचीत एवं तर्क से राम-स्त्रीवध के जघन्य अपराध से मुक्त हो जाते हैं। शक्ति लगने पर विभीषण द्वारा ही औषधि देने की बात का निर्देश किया गया है। उन्होंने रामपक्ष के दोषों की ओर भी संकेत किया है तब विभीषण को व्यंग्य में कुलभूषण कहता है। इस प्रकार मौलिक तर्क हमें अनेक संवादों और घटनाओं से मिलता है +

"रामचन्द्रिका" में श्रीराम का कथानक इष्ट था किन्तु हम देखते हैं कि पांडित्य एवं चमत्कार प्रदर्शन की वृत्ति में पड़कर केशव कथा का तादतम्य खो बैठे; घटनाओं का नियोजन उतना अच्छा न बन पड़ा जितना

---

+ देखिए 'गुलाबराय जी का लेख' "रामचन्द्रिका" में प्रबन्ध निर्वाह"

तुलसी के "मानस" में है। "रामचन्द्रिका" में मुक्तक काव्य के गुण अधिक मिलते हैं। कथा-प्रवाह टूटता हुआ दिखाई देता है। नियमानुकूल कोई तादतम्य नहीं बना रहा सका है। जहाँ कहीं अवसर प्राप्त हुआ, केशव क्लिष्ट भाषा और अलंकार नियोजन का चमत्कार पूर्ण वर्णन की दलदल में फँस गए; विस्तार से अपनी स्वतन्त्रता प्रवृत्ति एवं पांडित्य की कलाबाजियाँ दिखाने लगे; शब्दज्ञान और विद्वत्ता की बारीकियाँ, नाना छन्दों की नुमाइश सजाने लगे, पर इस प्रदर्शन में कथा का सम्बन्ध निर्वाह अवरुद्ध हो गया। मार्मिक स्थलों को परस्पर शृंखलाबद्ध करने वाले भाग शिथिल हैं। अनेक स्थलों पर विस्तृत वर्णन कर अन्त में टूटती हुई कड़ी को जल्दी से जोड़ दिया गया है। मार्मिक स्थलों को पहिचानने की शक्ति की अपेक्षा केशव चमत्कार विधान में लगे हुए प्रतीत होते हैं। १

---

१—कुछ आलोचकों के मत देखिए—

"रामचन्द्रिका" की बाह्य योजना देखने से विदित होता है कि केशव ने शास्त्रीय नियमों के अनुकूल ही इस महाकाव्य की रूपरेखा निश्चित की थी। ग्रन्थ का प्रारम्भ मनहरण छन्द में गणेश, सरस्वती, तथा राम इत्यादि की वन्दनाओं से होता है। कवि स्वयं अपना परिचय देता है, राममहिमा नाना छन्दों में विस्तार से वर्णन करता है महाकाव्य को नाना सर्गों में विभक्त किया गया है। यदि सर्गबद्ध विस्तृत प्रबन्ध काव्य को ही महाकाव्य कहा जाय, तो निश्चय ही यह एक महाकाव्य है।

(१) "रामचन्द्रिका एक सुव्यवस्थित व सुगठित माला के समान न होकर बिखरे हुए मोतियों का ढेर है·······उसके अधिकांश छन्द माला के टूटे हुए मोतियों के समान अपनी अलग-अलग सत्ता रखने वाले हैं—प्रो० हरिराम तिवारी एम० ए०।

(२) "यद्यपि रामचन्द्रिका प्रबन्ध काव्य के रूप में लिखी गई है तथापि उसमें मुक्तक के गुण अधिक हैं, कथा के तारतम्य की अपेक्षा अलंकरण एवं पाण्डित्य प्रदर्शन की रुचि अधिक है—"बा० गुलाबराय एम० ए०।

(३) "प्रबन्ध-काव्य होने के बदले वह अधिकतर छन्दों का एक अजा-

यदि विस्तार को ही महाकाव्य का आवश्यक अंग माना जाय, तो "रामचन्द्रिका" महाकाव्य है। यह महाकाव्य भगवान् राम के जीवन को तो सविस्तार चित्रित कर देता है किन्तु भावात्मक स्थलों, रसपूर्ण प्रसंगों, तथा मानव जीवन की जो सर्वाङ्गीणता तुलसी में है, वह इसमें नहीं आ पाई है। इसमें मानव जीवन की नाना सूक्ष्म अवस्थाओं की मार्मिक अभिव्यंजना नहीं है। महाकाव्य के विस्तार से यह तात्पर्य है कि महाकाव्यकार को मानव जीवन के विशद चित्रण, नाना अनुभूतियों की अभिव्यंजना के लिए पर्याप्त स्थान प्राप्त हो जाय। वह सब भावों, परिस्थितियों, भिन्न-भिन्न चरित्रों के गुण-दोषों की विवेचनात्मक व्याख्या कर सके। यह कार्य केशव न कर सके, अनावश्यक प्रसंगों के चमत्कारपूर्ण वर्णनों तथा पाण्डित्य प्रदर्शन या अलंकार-योजनाओं में वे लगे रहे।

अतः हम यह कह सकते हैं कि प्रबन्ध निर्वाह की दृष्टि से "रामचन्द्रिका" एक असफल असम्बद्ध महाकाव्य है। इसमें प्रबन्ध टूटता-सा प्रतीत होता है, किन्तु कवि निर्बल सूत्र से उसे जोड़कर आगे बढ़ जाता है। सूत्र टूटने नहीं पाता। निर्बल कथा सूत्र होते हुए भी महाकाव्य का यह लक्षण "रामचन्द्रिका" में मौजूद है चाहे हम इसे वाह्यावरण मात्र ही कहें। जहाँ इसमें यह त्रुटि है, वहाँ एक बड़ी सफलता भी है। प्रबन्ध में आने वाले संवाद इसका एक बड़ा आकर्षण हैं। इन संवादों में इतनी सजीवता, वाक्पटुता, तर्कपूर्णता और दरबारी नियमों का सूक्ष्म अवलोकन है कि "रामचन्द्रिका" के कुछ अंश नाटक जैसे प्रतीत होते हैं। दो पात्र परस्पर नाटकीय पद्धति से बातचीत करते हुए प्रतीत होते हैं। केशव

---

बबघर सा हो गया है"......मालूम होता है जैसे फुटकर पद्यों का तरतीबवार संग्रह कर दिया गया हो; विषय की संभावनाओं को देखते हुए जिन्हें उन्होंने वह रूप दे डाला जो हमें आज देखने को मिलता है"—डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल।

की सफलता इस कला में है कि उन्होंने नाटकीय पद्धति से इन्हें यथा स्थान जड़ दिया है। पढ़ने में नाटक जैसा आनन्द आने लगता है।

प्रबन्ध निर्वाह में निर्बलता का क्या कारण है? इस सम्बन्ध में डा० बड़थ्वाल का मत माननीय है। आप लिखते हैं, "प्रसन्न-राघव" तथा "हनुमन्नाटक" से केशव ने कई श्लोकों का ज्यों का त्यों अनुवाद किया है, जिन्हें उन्होंने प्रबन्ध के भीतर पूर्णरूप से पचाने का प्रयत्न नहीं किया है। जहाँ पर उन्होंने उसे पद्धति के रूप में लिया है—ऐसे भी कुछ स्थल हैं—वहाँ पर का सौंदर्य कुछ दूसरा ही है, वहाँ असमर्थता का भान भी नहीं होता। परन्तु इतना होने पर भी यह नहीं कहा जा सकता कि "रामचन्द्रिका" प्रबन्ध नहीं है; क्योंकि वस्तुतः प्रबन्ध की धारा कहीं पर टूटती नहीं है, यद्यपि उस धारा का सूत्र पकड़ने में पाठक को कुछ देर अवश्य लग जाती है।"

### भाव सौंदर्यः—

महाकाव्य का महत्त्व उसके भाव सौंदर्य से है। "रामचन्द्रिका" इस दृष्टि से साधारण कोटि का है, कारण केशव ने काव्य के कला पक्ष की ओर विशेष ध्यान दिया है। भावपक्ष निर्बल है, हृदय की संवेदनशीलता उपेक्षित रही है। भाव-पक्ष की जो व्यापकता तुलसी ने की है, केशव में उससे आधी भी भावुकता जाग्रत नहीं हो पाई है। ध्यान से निरीक्षण करने पर प्रतीत होता है कि उनके द्वारा चित्रित प्रकृति का पक्ष और भी अपूर्ण नीरस सा है। कुछ भावुकतापूर्ण अंश देखिए—

कौशल्या की ईर्ष्या की अभिव्यक्ति कितनी मनोवैज्ञानिक ढंग से हुई है—

रहो चुप ह्वै सुत क्यों बन जाहु,
न देखि सकैं तिनके उर दाहु;"

बन जाती हुई सीताजी का सौंदर्य देखिए—

"वासों मृग अंक कहै तोसों मृगनैनी सब,
वह सुधाधर तु हूँ सुधाधर मानिए।

वह द्विजराज तेरे द्विजराजि राजै,
वह कमलानिधि तुहू कला कलित बखानिए।"

राक्षसियों के मध्य दुःखी संतप्त माता सीता का चित्र देखिए :—

"मनो बुद्धि सी चित्र चितानि मानो।
किधौं जीभ दंतावली में बखानो॥

राम-भरत मिलन में हर्षातिरेक की अच्छी अभिव्यंजना मिलती है:—

"आवत विलोकि रघुबीर लघु बीर तजि
व्योम गति भूतल विमान तब आइयो।
राम-पट-पद्म सुख-सद्म कहँ बंधु युग
दौरि तब पट् पद समान सुख पाइयो॥
चूमि मुख सूँघि सिर अंक रघुनाथ धरि
अश्रु-जल-लोचननि पेखि उर लाइयो।
देव मुनि वृद्ध परसिद्ध सब सिद्ध जन
हर्षि तन पुष्प-बरषानि बरषाइयो॥

हनुमानजी द्वारा जलाई हुई लंका का एक दृश्य देखिए—

"जटी अग्नि ज्वाला अटा सेत हैं यों,
शरत्काल के मेघ संध्या समैं ज्यों।
लगी ज्वाल धूमावली नील राजैं,
मनो स्वर्ण की किंकिनी नाग साजैं॥

संवादों में नाना भावों की बड़ी उत्तम व्यंजना हुई है। उत्तर प्रत्युत्तर में चमत्कार के साथ-साथ नाना भाव विभावों का मार्मिक चित्रण है—एक उदाहरण लीजिए—

"रे कपि कौन तू? अक्ष को घातक दूत बली रघुनंदन जू को।
को रघुनन्दन रे? त्रिशिरा-खर दूषण दूषण भूषण भू को॥
सागर कैसे तरयो? जैसे गोपद काज कहा? सिय चोरहि देख्यो।
कैसे बंध्यो? जु सुन्दरि तेरी छुई दृग सोवत पातक लेख्यो॥"

इस प्रकार कहीं-कहीं केशव भी अच्छी भाव व्यंजना कर सके हैं।

उनकी रुचि पाण्डित्य प्रदर्शन और चमत्कार प्रदर्शन में लगी रहने से मार्मिक स्थलों में भी क्लिष्टता और वक्रता आ गई है, भाव सौष्ठव विलीन हो गया है। प्रवचन-पटुता की दृष्टि से केशव को अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हुई है, किन्तु प्रेम, शील, विनय, त्याग, मनः संघर्ष की भावना-स्थितियों में अपने को डालकर वे उसके अनुरूप भाव का अनुभव या चित्रण नहीं कर सके हैं। उनके द्वारा चित्रित भावों में न तुलसी जैसी गहराई है, न तीव्रता।

चरित्र चित्रण :—

✓चरित्र चित्रण की दृष्टि से "रामचन्द्रिका सफल महाकाव्य नहीं है। वे पात्रों के चरित्र स्वभाव एवं प्रवृत्तियों में गहराई से प्रविष्ट नहीं हो सके हैं। उनकी बुद्धि वाग्वैदग्ध्य तथा अलंकार-छन्द परिवर्तन में लगी रही वे जीवन व्यापी मनोविकार, चरित्र के निगूढ़ तम पहलुओं को न देख सके। चरित्रों को अन्दर तक पैठ कर देखने की अन्तर्दृष्टि उनमें न थी।*

उदाहरण स्वरूप, बालिवध के प्रसंग में केशव के राम अनौचित्य स्वीकार करते हैं, जबकि तुलसी के राम तर्क पूर्ण उत्तर देकर उसका मुख बन्द कर देते हैं। केशव के राम भरत पर संदेह करते हैं—

"आई भरत्थ कहाँ धौ करैं, जिय भाय गुनौ।
जो दुख देहँ तो लै उरगौ, यह बात सुनै॥

केशव के राम उत्तेजित भरत पर लक्ष्मण का क्रोध शान्त नहीं करते। अंगद के चरित्र को केशव ने मौलिकता से उभारा है। उनका अंगद चतुर

* "केशव के चरित्र चित्रण की रेखाएँ स्पष्ट नहीं हैं, परन्तु वे विशिष्टता शून्य नहीं हैं। कहीं-कहीं पर उन्होंने इस सम्बन्ध में अन्य रामचरितकारों से विवेचन की मात्रा अधिक दिखलाई है।"

—डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल

"केशव का चरित्र चित्रण त्रुटिपूर्ण है। अनेक स्थलों पर उन्होंने भगवान् राम के मुख से ही सर्वथा अनुपयुक्त और अप्रसांगिक बातें कहलवाई हैं"—"सुमर" और मल्लिक

शक्तिशाली, वाक्पटु है। अंगद रावण को जो व्यंग्यपूर्ण उत्तर देता है, वे केशव की सूझ-बूझ के परिचायक हैं। जब-जब रावण उनसे प्रश्न करता है, अंगद ऐसा व्यंग्यपूर्ण उत्तर देता है कि रावण आगे कुछ बोल नहीं पाता। एक अंश देखिए—

अंगद—"जाति वानर, लंकनायक-दूत, अंगद नाम है" ॥
"कौन है वह बाँधि कै हम देह पूछि सबै दही" ?
"लंक लादि संहारि अच्छ गयो जो बात वृथा कही" ॥
"कौन के सुत ?" "बालि के" "वह कौन बालि" न जानिए !
"काँख चापि तुम्हें जो सागर सात न्हात बखानिए ॥"
"है कहाँ वह बीर ?" अंगद "देवलोक बताइयो।
"क्यों गयो ?" "रघुनाथ-बान-बिमान बैठि सिधाइयो"।

रावण अंगद को अनेक प्रकार के प्रलोभन देता है। डराता है, तर्क उपस्थित करता है। राम को बालि का हत्यारा कह कर उनसे प्रतिशोध लेने की राय देता है—

रावण—"जो सुत अपने बाप को बैर न लेइ प्रकास।
तासों जीवत ही मरयो, लोग कहैं तजि आस ॥"

कैकेयी के चरित्र के साथ भी पूर्ण न्याय नहीं हो सका है। मंथरा का कहीं निर्देश नहीं है। वनगमन का प्रसंग लिखते हुए केशव केवल जल्दी से कैकेयी के मुख से यह कहलवा देते हैं—

(कैकेयी)— "नृपता सुविसेस भरत्थ लहैं।
बरषै बन चौदह राम रहैं ॥

इस प्रसंग पर बा० गुलाबराय की सम्मति माननीय है। वे लिखते हैं, "इसमें कैकेयी का चरित्र एकदम गिर जाता है, राम बनवास का सारा भार उसके सर पर पड़ता है। दशरथ के राजमहल का गौरव और पारस्परिक प्रेम भाव नष्ट होकर उसकी स्थिति एक कलहपूर्ण साधारण परिवार की सी हो जाती है। मंथरा का कहीं नाम तक नहीं आता, किन्तु रामचन्द्र जी के अयोध्या लौटने पर उनकी इस बात की प्रशंसा की जाती है कि उन्होंने मन्थरा से कोई बुराई नहीं आती.........। जिन पाठकों ने

रामचरित का अध्ययन केवल रामचन्द्रिका से किया हो उनके लिए मंथरा का राम किसी बाहरी अन्तर्कथा के रूप में आता है। मूल पुस्तक से उसका कोई सूत्र नहीं मिलता।")

केशव ने राम के साथ सुमंत्र भेजने की कोई योजना नहीं रखी है। दरबार में रहने और राजाओं के यहाँ की प्रथाओं के जानकर केशव ने कैसे यह गलती कर डाली ?

सीता के चरित्र की उज्ज्वलता को बनाये रखने में वे प्रयत्नशील रहे हैं। एक स्थान पर राम सीता से कहते हैं—

"चाहत हौं भुव भार हरयो अब !
पावक में निज देहहिं राखहु।
छाय शरीर मृगै अभिलाषहु॥"

जब पाठकों को यह विदित हो जाता है कि सीता की छाया मात्र मृग की अभिलाषा कर रही हैं, तो वे आगे की कथा को कृत्रिम मानने लगते हैं।

उपर्युक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि केशव का चरित्र चित्रण त्रुटि पूर्ण है। प्रायः सभी चरित्रों को उन्होंने अपने ढंग से तोड़ा मरोड़ा है। जो नवीनताएँ उन्होंने उत्पन्न की हैं, वे "प्रसन्न राघव" वाल्मीकि रामायण, या "हनूमन्नाटक नारद" के आधार पर हैं।

वस्तु-वर्णन—

महाकाव्य में जिन-जिन चीजों का वर्णन मिलना चाहिए, लगभग (उन सब के लम्बे सांगोपांग वर्णन उपलब्ध हो जाते हैं वस्तु वर्णन की दृष्टि से यह महाकाव्य की आवश्यकताएँ पूर्ण करता हुआ दीखता है।) 'रामचन्द्रिका' में सरयू नदी, बाग, अवधपुरी, तपोवन, सूर्योदय, वन, चित्रकूट, गोदावरी, पंपासर, प्रवर्षणगिरि, वर्षा, शरद ऋतु, मुद्रिका, वसन्त, राम-विरह, समुद्र, रामचमू, कुम्भकर्ण, मेघनाथ वध, मकराक्ष-वध, राम-रावण युद्ध, रावण वध, त्रिवेणी वर्णन, भरद्वाज आश्रम-वर्णन, अवध-वर्णन, राम तिलकोत्सव वर्णन, रामराज्य वर्णन, सेना वर्णन मिलते हैं। कवि केशव ने इन सभी के वर्णन चमत्कार और अलंकार पूर्ण किए हैं। इनमें प्राचीन

शास्त्रीय परम्पराओं का पालन हुआ है। अलंकारों की इतनी भरमार है कि वे रसों में सहायक बाधा उपस्थित करते हैं। इनका शब्द कौशल दर्शनीय है। केशव संस्कृत के प्रकांड पंडित थे, अतः शास्त्रीय पद्धति पर वर्णन करना उन्हें विशेष प्रिय था। नाना वर्णनों के द्वारा उन्होंने अपने मानवीज समाज, एवं प्रकृति से परिचित होने का परिचय दिया है। ये वर्णन प्रकरणानुकूल स्वाभाविक रीति से जड़े हुए न होकर स्वतन्त्र फुटकर, रचनाएँ प्रतीत होती हैं। विना संदर्भ के पढ़ने वाले भी इनसे आनन्द उठा सकते हैं।

अवधपुरी का वर्णन देखिए—

ऊँचे अवास। बहु ध्वज प्रकास।
सोभा विलास। सोभै अकास॥
अति सुन्दर अति साधु। थिर न रहत पल आधु।
परम तपोमय मानि। दइ धारिनी जानि॥

(त्रिभंगी छन्द)

सम सबघर सोभैं, मुनि मन लोभैं,
रिपुगण छोभैं, देखि सबै।
बहु दुदंभि बाजैं, जनु घन गाजैं,
दिग्गज लाज, सुनत जब॥
जहँ तहँ पढ़हीं, विघन न बढ़हीं,
जै जस मढ़हीं, सकल दिशा॥
सबई सब विधिछम, बसत यथाक्रम,
देवपुरी सम दिवस निशा॥

चारों वर्ण परस्पर जिन कर्त्तव्यों के पालन में लीन हैं। एक आदर्श नगर व्यवस्था की झलक इस वर्णन में हमें प्राप्त हो जाती है। विवाह के वर्णन में सविस्तार केशव ने सूक्ष्मातिसूक्ष्म रीतिरिवाज़, शिष्टाचार के वर्णन तक का ध्यान रखा है। दायज वर्णन को भी नहीं भूले हैं। नागरिक जीवन एव समाज की एक झाँकी इनमें हमें प्राप्त हो जाती है। वर्णनों

के मोह में राम की मर्यादा को भी भूल बैठे हैं सीमाओं का खुला नख-शिख वर्णन है।

प्रकृति वर्णन—

"रामचन्द्रिका" में अनेक स्थानों पर प्रकृति के वर्णन मिलते हैं। इनमें भी प्राचीन संस्कृत लक्षण-ग्रन्थों का आधार लिया गया है। प्रकृति चित्रण की दृष्टि से उनके सूर्योदय, नदी, संगम, वर्षा, शरद ऋतु, पंपासर, तपोवन, चित्रकूट, त्रिवेणी, उद्यानों आदि के वर्णन विशेष महत्त्वपूर्ण बन पड़े हैं।

आरम्भ में ही हमें सरयू-वर्णन मिल जाता है। नदियों के वर्णन में उन्होंने प्रायः निम्न वस्तुओं का वर्णन किया है :—

जलचर है गय जलज तट, यज्ञ कुंड मुनिवास।
न्हान दान पावन नदी, वरणी केशवदास॥

इन्हीं के आधार पर उन्होंने सरयू, गोदावरी आदि नदियों का चित्रण किया है। सरयू वर्णन के कुछ अंश देखिए जिनमें कवि उपदेशवृत्ति को नहीं भूल सका है—

"पुनि आये सरयू सरित तीर।
तहँ देखे उज्ज्वल अमल नीर।
नव निरखि-निरखि द्युत गति गम्भीर।
कछु वरणन लागे सुमति धीर॥
अति निपट कुटिल गति यदपि आप।
तउ देत शुद्ध गति छुवत आप।
कछु आपुन अध अध गति चलंति॥
फल पतितन कहँ उरध फलंति।
मदमत्त यदपि मातंग संग।
अति तदपि पतितपावन तरंग॥
बहु न्हाई जेहि जल सनेह।
सब जात स्वर्ग सूकर सुदेह॥"

उद्यान वर्णन में नाना वृक्षों, पुष्पों, कोकिलों, भ्रमरों का निर्देश किया

गया है। इसमें केवल इन वस्तुओं के नाम मात्र न गिना कर उनसे उत्पन्न आनन्द, उल्लास, तथा हर्षातिरेक का वर्णन भी किया गया है। एक उद्यान का वर्णन देखिए—

"देखि बाग अनुराग उपज्जिय।
बोलत कलध्वनि कोकिल सज्जिय॥
राजति रति की सखी सुवेषनि।
मनहुँ बहति मनमथ संदेशनि॥
फूलि फूल तरु फूल बढ़ावत।
मोदत महा मोद उपजावत॥
उड़त पराग न, चित्त उड़ावत।
भ्रमर भ्रमत नहिं, जीव भ्रमावत॥
सुभ सर शोभै मुनिमन लोभै।
सरसिज फूलै अलि रस भूलैं॥
जलचर डोलैं बहु खग बोलैं।
बरणि न जाहीं उर अरुझाहीं॥

ऋतु वर्णन में केशव ने ये वर्ण्य विषय माने हैं—

"अमल अकाश प्रकाश शशि, मुदित कमल कुल कास,
पंथी पितर पयान नृप, शरद् सुकेशवदास।"

"रामचन्द्रिका" में ऋतु वर्णन के इसी आधार का पालन किया गया है :—

"दंतावलि कुंद समान गनौ। चन्द्रानन कुंतल भौरं घनै॥
भौहैं धनु खंजन नैन मनौ। राजीवनि ज्यों पद पानि भनौ॥
हारावलि नीरज हीय रमैं। हैं लीन पयोधर अंबर मैं॥
पाटीर जोन्हाइहि अंग धरै। हंसी गति केशव चित्त हरै॥
श्री नारद की दरसै मति सी। लोरै तमता अपकीरति सी॥
मानौ पतिदेवन की रति कौ। सतमारग की समुझै गति कौ॥

केशव के शरद ऋतु वर्णन, वर्षा वर्णन, गोदावरी चित्रण इत्यादि परम्परागत विधियों के अनुसार हुए हैं। गोदावरी चित्रण में धार्मिक

भावों एवं अलंकारों की बहुलता है। वर्षा-वर्णन पुराणों में वर्णित वर्षा के समान, अलंकार उद्दीपन तथा नायिका-वर्णन के आभास से युक्त है। शरद वर्णन परम्परा के संकीर्ण मार्ग में बँधा हुआ है। शरद. वर्णन में भिन्न भिन्न रूपकों का आश्रय लिया गया है। डा० टीकमसिंह तोमर का यह मत ठीक है :—

"केशव के ऋतु वर्णन भी उसी प्रकार के हैं, जिस प्रकार के अन्य वर्णन। इन्होंने कहीं पर भी ऋतुओं से सम्बन्धित स्वभाविक प्राकृतिक रमणीयता का काव्योचित वर्णन नहीं किया है। उनका मन प्रस्तुत प्राकृतिक विषयों की रम्यता में मग्न होना नहीं जानता था। वे अप्रस्तुतों की कौतूहलपूर्ण योजना में लगे रहते थे विविध अलंकारों, उद्दीपन, नीति आदि की दृष्टि से किये गये भागवत् और मानस के समान उनके प्रकृति-चित्रण मिलते हैं। केशव परम्परा के पूरे अनुयायी एवं बाण आदि संस्कृत कवियों से पूर्णरूपेण प्रभावित थे।"×

परम्परागत विचारधारा एवं शास्त्रीय पद्धति पर होने के कारण केशव का प्रकृतिवर्णन सजीव एवं प्रमाणिक नहीं बन पाया है। प्रायः भूगोल की भूलें भी मिलती हैं। जो फल या पक्षी जहाँ नहीं मिलते उन्हें, वहाँ दिखा दिया गया है। उन्होंने प्रकृति को स्वयं अपने नेत्रों से न देख कर प्राचीन संस्कृत कवियों की दृष्टि से देखा था। प्रकृति वर्णनों में उनके हृदय का तादात्म्य नहीं मिलता। पात्रों की मनः स्थितियों का प्रतिबिम्ब उनकी प्रकृति में नहीं है। प्रकृति में पात्रों को अपनी मानसिक अवस्थाओं के अनुसार हर्ष, क्रोध, शोक आदि का कोई आभास दृष्टिगोचर नहीं होता। जीवन का कोई स्पन्दन केशव प्रकृति वर्णन में न डाल सके।॥

× डा० टीकमसिंह तोमर "केशव और प्रकृति चित्रण" सरस्वती संवाद १–१२।

॥ (१) "प्रकृति निरीक्षण से प्रभावित होने का वे जरा भी परिचय नहीं देते""मालूम होता है कि प्रकृति के बीच में भी वे आँख बन्द करके जाते थे, क्योंकि प्रकृति के दर्शन से प्रकृत कवि के हृदय की भाँति उनका हृदय आनन्द से नाच नहीं उठता""फूल उनके लिए निरुद्देश फूलते हैं,

कदाचित् इस असफलता का कारण यह था कि वे दरबारों में रहे थे, विस्तृत प्रकृति में भ्रमण-निरीक्षण का उन्हें पर्याप्त अवसर प्राप्त नहीं हुआ था।

शैली :—

✓ उच्चकोटि का काव्य-कला ज्ञान, शब्द चयन पर असाधारण अधिकार, अलंकार की उन्नतम उड़ान और हिन्दी एवं संस्कृत भाषाओं का पूर्ण ज्ञान—इन कारणों से केशव की शैली में चमत्कार एवं वाक् पटुता, वाणी की वक्रता और छन्द शास्त्र की गहराई भरी हुई है। सजीव संवादों का वागवैदग्ध्य ऊँचे दर्जे का है। अलंकारों की कलात्मकता और पग-पग पर परिवर्तित छन्दों की योजना से उनकी व्यंजना अनूठी बन गई है। केशव की दृष्टि अलंकार तथा चमत्कार प्रदर्शन की ओर विशेष रूप से रही है। साधारण वर्णन भी अलंकारों से बोझिल हो उठे हैं। भाषा की क्लिष्टता का कारण उनका संस्कृत से विशेष प्रभावित होना है। केशव ने छन्दों को स्थान-स्थान पर बदला है। प्रत्येक सर्ग में एक एक छन्द होने और नए सर्ग में उसे बदलने से एकरसता दूर हो जाती है किन्तु "रामचन्द्रिका" में छन्द-परिवर्तन दोष की हद तक पहुँच गया है। ×

संवाद प्रौढ़ता की दृष्टि से यह महाकाव्य अभूतपूर्व है। इसमें आये हुए राम-परशुराम संवाद, अंगद रावण संवाद, भरत कैकेयी संवाद,

नदियाँ बेमतलब बहती हैं, वायु निरर्थक बहती है। प्रकृति में वे कोई सौंदर्य नहीं देखते" —डा० पीताम्बरदत्त बडथ्वाल

(२) "जीवन के अंतरंग पहलू, उदात्त कोमल भावना और प्रकृति की सौन्दर्य सुषमा के प्रति उनका विशेष आकर्षण न था।"

—श्रीमती शचीरानी गुर्टू

× "रामचन्द्रिका" एक प्रकार से छन्द और अलंकारों की प्रदर्शिनी बन गई है।

छन्द बाहुल्य पर तो केशव ने सगर्व संकेत किया है—"रामचन्द्र की चन्द्रिका वर्णत हौं बहु छन्द" —बा० गुलाबराय एम० ए०।

सुमति-विमति संवाद आदि में उच्चकोटि का वाग्वैदग्ध्य देखा जा सकता है।

केशव अलंकार तथा छन्द शास्त्र के सम्राट् थे। "रामचन्द्रिका" में प्रायः सभी अलंकारों एवं छन्दों के उत्तम उदाहरण देखे जा सकते हैं। सूर तुलसी जैसी सरसता या तन्मयता केशव में न मिले पर चमत्कार, शब्द कौशल, अलंकार और छन्द आदि के विस्तृत भेद-निरुपण और उदाहरण "रामचन्द्रिका" में सर्वत्र उपलब्ध हैं।

(ऊपरी दृष्टि से "रामचन्द्रिका" में महाकाव्य के प्रायः सब ही गुण मिल जाते हैं।) कला-पक्ष की दृष्टि से यह महाकाव्य हिन्दी में निस्संदेह अद्वितीय है पर इसमें उचित प्रबंधात्मकता और सरसता का अभाव खटकता है। चमत्कार वादी छन्द-अलंकारों की परम्परा की "रामचन्द्रिका" एक निधि है।

# आधुनिक महाकाव्य

## ( १ ) प्रिय प्रवास

रीतिकाल के अलंकार-छन्द की चमत्कार वादी परम्परा अधिक दिनों तक प्रचलित न रह सकी। धीरे धीरे ब्रजभाषा तथा रूढ़िग्रस्त काव्य परम्परा के विरुद्ध खड़ी बोली में यथार्थवादी प्रयोग प्रसंग होने लगे। आश्रयदाताओं का मोह त्याग कर नवीन हिन्दी कविता जन-जीवन के निकट आ गई, सरलता, स्वभाविकता एवं स्वच्छन्दता खड़ी बोली की नवीन हिन्दी कविता के मुख्य लक्षण बने। इस दृढ़ नींव पर आधुनिक महाकाव्यों की परम्परा को पुनरूजीवित. किया गया। इसका श्रेय पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध" श्री मैथिलीशरण गुप्त एवं श्री जयशंकर प्रसाद को प्राप्त है।

"प्रिय प्रवास" खड़ी बोली का प्रथम महाकाव्य—

ऐतिहासिक महत्त्व तथा विशेपताएँ—"प्रिय प्रवास" कई दृष्टियों से युगान्तरकारी महाकाव्य है। सर्व प्रथम भाषा की दृष्टि से यह एक महत्वपूर्ण रचना थी। अभी तक काव्य-भाषा ब्रजभाषा थी, यद्यपि गद्य में खड़ी बोली का व्यवहार किया जा रहा था। स्वयं "सरस्वती" सम्पादक श्री महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अपनी प्रारम्भिक कविताएँ ब्रजभाषा में की थीं, किन्तु वे निरन्तर खड़ी बोली का अधिकाधिक प्रचार करते और उसकी भावी शक्तिशीलता की ओर संकेत करते रहे। द्विवेदी जी की प्रेरणा से खड़ी बोली में महाकाव्य रचकर "हरिऔध" जी ने नया पथ प्रशस्त किया। "प्रिय प्रवास" ब्रजभाषा का बहिष्कार कर खड़ी बोली में लिखा गया है। खड़ी बोली के अन्य ग्रन्थ छोटे छोटे खण्ड काव्य या अनुवादित रचनाएँ ही थीं। गुप्त जी का "जयद्रथ वध" खण्ड काव्य था, "हरिऔध" जी ने खड़ी बोली में यह दीर्घाकार महाकाव्य १७ सर्गों में लिखकर एक नया आदर्श खड़ा किया था।

दूसरी विशेषता कविता प्रणाली की थी। अभी तक कविगण अन्त्यानुप्रास (तुक) के बड़े प्रेमी थे। अन्तिम ध्वनि एक ही रहे, ऐसी धारणा मन में व्याप्त थी। "हरिऔध" जी ने इसके विरुद्ध भी क्रान्तिकारी कदम उठाया और संस्कृति में प्रयुक्त "भिन्नतुकान्त" कविता के नवीनतम प्रयोग खड़ी बोली में प्रचलित किए। स्वयं उन्होंने लिखा है:—

"मुझे एक ऐसे ग्रन्थ की आवश्यकता देख पड़ी जो महाकाव्य हो और ऐसी कविता में लिखा गया हो, जिसे भिन्नतुकान्त कहते हैं। अतएव मैं इस न्यूनता की पूर्ति के लिए कुछ साहस के साथ अग्रसर हुआ, और अनवरत परिश्रम करके इस "प्रियप्रवास" नामक ग्रन्थ की रचना की.... मुझ में महाकाव्यकार होने की योग्यता नहीं, मेरी प्रतिभा ऐसी सर्वतोमुखी नहीं, जो महाकाव्य के लिए उपयुक्त उपस्कर संग्रह करने में कृतकार्य हो सके, अतएव मैं किस मुख से कह सकता हूँ कि "प्रियप्रवास" बन जाने से खड़ी बोली में एक महाकाव्य न होने की न्यूनता दूर हो गई.... तथापि यह कहूँगा कि भिन्नतुकान्त कविता भाषा साहित्य के लिए बिल्कुल नई वस्तु है और इस प्रकार की कविता में किसी काव्य का लिखा जाना तो "नूतन नूतन पदे पदे" है।

संस्कृत में अनेक काव्य ग्रन्थ अतुकान्त अथवा अन्त्यानुप्रसहीन कविता में लिखे गए हैं। अन्य भाषाओं जैसे बंगला, पंजाबी, उर्दू, मरहाठी गुजराती में भी भिन्न तुकान्त कविता पाई जाती है। हरिऔध जी ने भाषा की व्यापकता बढ़ाने की दृष्टि से भिन्नतुकान्त शैली में "प्रियप्रवास" में नए प्रयोग किए हैं। इन प्रयोगों में वे पूर्णतः सफल भी हुए हैं और भिन्नतुकान्त कविता उसी सुविधा, स्वतन्त्रता, सरसता एवं उत्तमता से कर सके हैं, जैसे अन्त्यानुप्रास युक्त कविता की जाती है।

"प्रियप्रवास" का तृतीय विशेषता काव्य वृत्त हैं। अभी तक हिन्दी कवियों का ध्यान संस्कृत कविता में प्रयुक्त छन्दों की ओर तथा खड़ी बोली की कविता के प्रसार के साथ २ कवियों का ध्यान संस्कृत छन्दों को हिन्दी काव्य में लाने की ओर गया। कुछ कवियों ने इन्द्रवज्रा, मन्दाक्रान्ता, शिखरिणी आदि संस्कृत छन्दों के प्रयोग खड़ी बोली में किए, किन्तु उनमें

काव्योचित लावण्य एवं सरसता न आ सकी। "हरिऔध" ने खड़ी बोली में संस्कृत के मन्दाक्रान्ता, शिखरिणी, मालिनी वसन्ततलिका, शार्दूलविक्रीडित, वंशस्थ आदि छन्दों के प्रयोग किए। भाषा का गौरव बढ़ाने की दृष्टि से ललितवृत्तों एवं नूतन छन्दों का समावेश अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रयोग था।

चतुर्थ विशेषता "प्रिय प्रवास" की भाषा है। उसमें हिन्दी के स्थान पर संस्कृत गर्भित क्लिष्ट शब्दों का चयन है। समासबद्ध क्लिष्ट संस्कृतमयी भाषा होने के कारण यह ग्रन्थ जन साधारण की वस्तु न रह कर विद्वानों के अध्ययन की वस्तु बन गया है। "प्रियप्रवास" के छन्द प्रयोग एवं संस्कृत गर्भित भाषा हमें अनायास ही केशव की स्मृति सजग कर देती है। जान बूझ कर संस्कृत समास पद्धति पर लिखकर इसे विद्वानों के चिन्तन-मनन की वस्तु बनाया गया है। इस सम्बन्ध में स्वयं "हरिऔध" जी ने भी निर्देश किया है।S

"प्रियप्रवास" की पांचवी विशेषता उसकी सरसता है। कतिपय विद्वानों का विचार था कि खड़ी बोली में सरस मर्मस्पर्शी भाव व्यंजना संभव नहीं है। खड़ी बोली को कर्कश, कर्णकटु और शुष्क समझा जा रहा था। इस वर्ग के आलोचक कहते थे कि "मधुर कोमल कान्त पदावली जिस कविता में न हो, वह कोई कविता नहीं। कविता तो वही है, जिसमें कोमल शब्दों का विन्यास हो, जो मधुर और कान्त पदावली द्वारा अलंकृत हो। खड़ी बोली में अधिकतर संस्कृत शब्दों का प्रयोग होता है,

S हिन्दी में जहां सरल पद्य में एक से एक सुन्दर ग्रन्थ हैं, वहां एक ग्रन्थ "प्रियप्रवास" के ढंग का भी सही""क्या ऐसे संस्कृत गर्भित ग्रन्थ हिन्दी में नहीं लिखे गए हैं? और क्या वे जनसमाज में समादृत नहीं हुए हैं? कुछ संस्कृत वृत्तों और अधिकतर मेरी रुचि के कारण इस ग्रन्थ की भाषा संस्कृत गर्भित है, क्योंकि अन्य प्रान्त वालों में यदि समादर होगे तो ऐसे ही ग्रन्थों का होगा""संस्कृत शब्दों के बाहुल्य से कोई ग्रन्थ अनादृत नहीं हो सकता"।

—हरिऔधः प्रियप्रवास भूमिका;६.

जो हिन्दी की अपेक्षा अधिक कर्कश होते हैं। व्रज भाषा स्वभाविक रूप से मधुर होती है, पर खड़ी बोली में सरसता, मधुरता और लावण्य संभव नहीं है।" —इस विचार धारा का खंडन करते हुए "हरिऔध" जी ने प्रिय-प्रवास महाकाव्य में सरसता कोमलता और कान्तता उत्पन्न करने के सफल प्रयोग किए हैं। इस ग्रन्थ ने यह प्रमाणित कर दिया कि कर्कश कहलाने वाली खड़ी बोली में भी अभूतपूर्व रस-वृष्टि की जा सकती है; खड़ी बोली में भी काव्योचित प्रवाह और मधुरता है। जिस प्रकार की कोमल कान्त पदावली व्रज भाषा में हो सकती है, वैसी ही श्रुति मधुर पदावली खड़ी बोली में भी संभव है। "प्रियप्रवास" मधुर खड़ी बोली का एक युगान्तरकारी नमूना है। उसमें कान्तता और मधुरता का उचित सम्मिश्रण है।

## प्रिय प्रवास में महाकाव्यत्व—

"हरिऔध" जी के मन में रूढ़िवादी परम्परा के अनुसार खड़ी बोली में एक महाकाव्य लिखने की तीव्र इच्छा थी, इसका निर्देश उन्होंने स्वयं भूमिका में कर दिया है:—

"महाकाव्य के अभास-स्वरूप यह ग्रन्थ सत्रह सर्गों में केवल इस उद्देश्य से लिखा गया है कि इसको देखकर हिन्दी साहित्य के लब्ध प्रतिष्ठ सुकवियों और सुलेखकों का ध्यान इस त्रुटि के निवारण करने की ओर आकर्षित हो।"

अतः यह स्पष्ट है कि प्रारम्भ से ही महाकाव्य सम्बन्धी क्रमागत्ति कविमय रुढ़ियों के पालन तथा उनके अनुसार खड़ी बोली में एक भिन्न तुकान्त महाकाव्य रचना की भावना हरिऔध जी के मन में थी। "पृथ्वी-राज रासौ" पद्मावत, रामचरितमानस, रामचन्द्रिका इत्यादि महाकाव्यों की रचना मे लक्षणों के निर्धारण की इतनी प्रवृत्ति न थी, जितनी "प्रिय-प्रवास" में प्रकट हुई। कदाचित् वे अपने वर्ण्य विषय में रूढ़िवादी परम्परा के पालन से अधिक रुचि रखते थे। "प्रियप्रवास" में प्रथम ध्येय यही था कि वह एक नए ढंग का महाकाव्य बन सके। प्रारम्भ में ही इसकी सूचना "भिन्नतुकान्त कविता का एक हिन्दी महाकाव्य" मुखपृष्ठ पर दे दी गई

है। आइये, विस्तार से देखें कि यह कहाँ तक एक सफल महाकाव्य कहा जा सकता है।

**प्रबन्धात्मकता:—**

"प्रियप्रवास" का कथानक लोकपावन कृष्णचरित से सम्बन्धित है। प्रथम सर्ग में श्रीकृष्ण का गोचारण करके लौटना, वर्णित है। मध्य में श्रीकृष्ण के विमुग्धकारी रूप का वर्णन है—

> "अतसि-पुष्प अ-लंकृतकारिणी।
> सुछवि नील-सरोरुह वर्द्धिनी॥
> नवल-सुन्दर-श्याम-शरीर की,
> सजल नीरद सी कल-कान्ति थी॥

कवि मुख श्री के वर्णन तन्मय हो गए हैं। सभी ग्वाल बाल श्रीकृष्ण की रूपमाधुरी पान करते हैं। धीरे २ रात्रि होती है और ग्वाल-बाल उनके गुण गान करती हुई स्व गृह को प्रस्थान करती हैं।

द्वितीय सर्ग में कंस की वह घोषणा सुनाई गई है; जिसमें नन्द को पुत्रों सहित मथुरा का नियंत्रण दिया गया है—

> "अमित-विक्रम कंस नरेश ने,
> धनुष यज्ञ विलोकन के लिए।
> कल समादर से व्रज भूप को,
> कुंवर सङ्ग निमंत्रित है किया॥"

तृतीय सर्ग में मथुरा-यात्रा की तैयारी का वर्णन है। यशोदा के लिए श्रीकृष्ण का जाना दुःखमय है, इस विकलता का परिचय भी यहां मिल जाता है। चतुर्थ सर्ग में राधा की कहानी मूल कथानक से संयुक्त हो जाती है। इसमें राधिका परिचय के अतिरिक्त दोनों परिवारों का आना जाना, कृष्ण यशोदा की प्रगाढ़ता, बाल क्रीडाओं का वर्णन है। कृष्ण के मथुरा जाने की बात सुनकर राधा की पीड़ा देखिये—

> 'यदि कल मथुरा प्रात ही जा रहे हैं।
> बिन मुख अवलोके प्राण कैसे रहेंगे॥

युग सम घटिकाएं वार की बीतती थीं।
सखि, दिवस हमारे बीत कैसे सकेंगे ॥

पंचम सर्ग में यात्रा के प्रारम्भ में परिजनों और ग्राम निवासियों के वियोग-जन्म दुःख का वर्णन है। अपने घर छोड़ छोड़ कर गोकुल के सभी व्यक्ति एक स्थान पर एकत्रित हो जाते हैं। कृष्ण अक्रूर के साथ रवाना होते हैं सब ग्वाल बाल, यशोदा तथा गोकुल वासी व्यथित हो उठते हैं। एक वृद्ध अक्रूर से उन्हें न ले जाने की प्रार्थना करता है—

'सच्चा प्यारा सकल ब्रज का वंश का है उजाला।
दीनों का है परमधन औ वृद्ध का नेत्र तारा ॥
बालाओ का प्रिय स्वजन औ बन्धु है बालकों का।
ले जाते हैं सु-रतन कहाँ आप ऐसा हमारा ॥

छटे सर्ग में कृष्ण के लोटने की प्रतीक्षा होने लगती है। राधा दुःख-कातर हो पवन दूत को बना कर कृष्ण के पास भेजना चाहती है। यह वर्णन लम्बा और सुन्दर है। राधा की मनोभावनाएं बड़े मार्मिक रूप से इस सर्ग में अभिव्यक्त हुई हैं। सप्तम सर्ग में नन्द का गोकुल वापस आ जाना वर्णित है। कृष्ण को वापस न आया देख कर सब ग्रामवासी दुःख के सागर में डूब जाते हैं। यहाँ तक कथानक परस्पर सम्बद्ध रूप में चलता रहता है किन्तु ज्योंही अष्टम सर्ग में प्रविष्ट होते हैं, कथानक में आगे आने वाली घटनाएं चित्रित न होकर विगतस्मृतियाँ गोपियों द्वारा वर्णित होती है। कवि ने इस भाग को जोड़ने में शिथिलता दिखाई है एक आभीर बैठा हुआ अपनी वेदनाएँ सुनाता है। इस सर्ग में कृष्ण की बाल लीला का वर्णन है।

नवम सर्ग में कृष्ण के आदेश से ऊधो जी गोपियों को ज्ञान तथा वैराग्य का उपदेश देने के लिए मथुरा से गोकुल आते हैं कृष्ण कहते हैं—

"देखो यद्यपि है अपार, ब्रज के प्रस्थान की कामना।
होता तदपि मैं निरस्त नित हूँ नाना प्रपंचों पड़ा ॥
ऊधो दग्ध वियोग से ब्रज-धरा है हो रही नित्यशः।
जाओ सिक्त करो उसे सदय हो आमूल ज्ञानाम्बु से ॥

प्रातःकाल एक यान मंगवा कर सारथ ले उद्धव गोपियों को ज्ञान देने के लिए गोकुल को प्रस्थान करते हैं। मार्ग में प्रकृति का सुन्दर वर्णन उन्हें प्राप्त होता है। दशम सर्ग में यशोदा द्वारा वर्णित कृष्ण की बाल-लीलाओं से परिपूर्ण है। सुत स्नेह से यह सर्ग ओत-प्रोत है।

ग्यारहवें सर्ग को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है—१—उद्धव द्वारा गोपियों को धैर्य प्रदान २—एक गोप द्वारा वर्णित कालीय दमन की कथा। इसमें तवे के समान तपती हुई पृथ्वी का भी वर्णन है। ३—वन में अग्नि लगाना और कृष्ण का उस कराल ज्वाला से ग्वाल-बाल एवं गो का बचाना दिखाया गया है—

द्वादश सर्ग में (१) इन्द्र का कोप एवं (२) गोवर्धन-धारण की कथाएँ हैं। सरस सुन्दर सावन मास का प्राकृतिक वर्णन उत्तम है। सब ग्रामवासी वर्षा से परेशान हैं। सात दिन तक प्रकृति क्रुद्ध रहती है। कृष्ण सबको सुचारु प्रबन्ध से सुरक्षित स्थानों पर पहुँचते हैं।

तेरहवें सर्ग में (१) अघासुर (२) केशी (३) और व्योमसुर के वध की विस्तार पूर्वक वर्णित कथाएँ हैं। चौदहवें सर्ग में (१) गोपियों और उद्धव की ज्ञान-भक्त पर गंभीर वार्ता है। उद्धव कहते हैं—

"वे जी से हैं अवनि के जन के सर्वथा श्रेयन्चन्हीं।
प्राणों से हैं अधिक उनको विश्व का प्रेम प्यारा॥

गोपियाँ नहीं मानती और अपना प्रेम-भाव चित्रित कर ऊधो से कृष्ण को लौटा लाने की प्रार्थना करती हैं। इसी सर्ग के अन्तिम भाग में शरद यामिनी का उत्सव चित्रित है। पन्दरहवें सर्ग में शृंगार रस का प्राधान्य है। ऊधो कुंजों में भ्रमण कर रहे हैं कि एक सुन्दर गोपी उन्हें मिल जाती है, जो श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में उन्मता प्रकट करती है। गोपी एक पुष्प हाथ में लेकर उससे सम्बोधन कर उसमें कृष्ण की स्मृतिएँ सजग मूर्ति मान कर प्रेम प्रदर्शन करती है। "प्रियप्रवास" के ......... सोलहवें सर्ग में राधा-उद्धव सम्वाद है और अन्तिम सर्ग में राधा का स्थान-स्थान पर जाकर दीन-दुखियों की सेवा करना चित्रित है।

इस प्रकार "प्रियप्रवास" में श्रीकृष्ण का सम्पूर्ण चरित एवं विभिन्न

लीलाएँ, नाना क्रीड़ाएँ और जीवन घटनाएँ गुम्फित हैं। कथानक में कृष्ण को प्रभावित करने वाले सब पात्रों की दशाओं का सविस्तार चित्रण है। सम्पूर्ण महाकाव्य आद्योपान्त पढ़ जाने पर कथानक पूर्ण तो हो जाता है, पर कृष्ण के जीवन का क्रमिक शृंखलाबद्ध चित्रण इसमें नहीं हो सका है। कृष्ण के युवाकाल का वर्णन अन्तिम दस सर्गों में किया गया है। प्रारम्भ में कौन कौन दृश्य रहे, फिर उनका क्रमिक विकास किस क्रम से रहे; कौन पहले, कौन पीछे रहे;—इस बात की ओर उपाध्यायजी की दृष्टि नहीं रही है।

इस सम्बन्ध में श्री विश्वम्भर मानव की सम्मति यथार्थ है–"उपाध्याय जी का यदि यह विचार रहा हो कि जब वर्णन करना है तब आगे लिख दिया तो क्या और पीछे लिख दिया तो क्या—प्रत्येक दशा में महाकाव्य बन जाता है, सो बात नहीं है। पिछले दस सर्गों के वर्णन जिनमें कृष्ण की युवाकाल तक की प्रमुख घटनाएँ सम्मिलित हैं वियोग के अन्तर्गत आते हैं और उसके आधीन होने से स्वतन्त्र कथानक और प्रबन्ध की शक्ति उनसे छिन जाती है।" *

कथानक में शृंखलाबद्ध विकास न होने के कारण यह महाकाव्य प्रबन्धात्मकता की शक्ति में निर्बल है। चूँकि कृष्णचरित सभी को स्मरण है, पढ़ते समय प्रबन्धात्मकता के टूटने का ध्यान नहीं रहता, पर वास्तव में घटनाओं का क्रमिक विकास न होने के कारण स्वतन्त्र सम्बद्ध कथानक का सा आनन्द नहीं आता। सभी प्रसंग टूटे-टूटे से प्रतीत होते हैं। अन्तर्कथाएँ जहाँ होनी चाहिए वहाँ नहीं रखी गई हैं। विलास और वियोग दशा का वर्णन बाहुल्य है। प्रथम पांच सर्गों में कुछ शृंखला का ध्यान रखा गया है किन्तु आगे चल कर कवि मार्मिक स्थलों के वर्णन में कल्पना एवं भावना के आवेश में उसे भूल-सा गया है। इतिवृत्त का उचित संगुफन न होने से यह बेडौल-सा प्रतीत होता है। हरिऔध जी कथानक

---

* देखिए—श्री विश्वम्भर मानव "खड़ी बोली के गौरव ग्रन्थ" पृष्ठ १४५।

का निर्माण करने में विशेष सफल नहीं रहे हैं। घटनाओं की अपेक्षा सर्वत्र वर्णनों की प्रधानता है।

**भाव व्यंजना—**

सम्पूर्ण महाकाव्य में शृङ्गार एवं करुण रसों की प्रधानता है। राधा एवं यशोदा के प्रेम की धारा सर्वत्र बहती है। बिछुड़े हुए प्रेमियों के हृदय द्रावक विलाप के अनेक मर्म-स्पर्शी अवसाद-पूर्ण चित्र इसमें संचित हैं। विरह की नाना मनःस्थितियों के चित्रण में कवि ने, रुचि प्रदर्शित की है। यशोदा के माध्यम से वात्सल्य तथा राधा के माध्यम से प्रेमिका के विरह की पीड़ा, मर्यादा, और सुहृदयता मार्मिकता से व्यक्त हुई है। यदि तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाय, तो राधा की भाव-व्यंजना को प्रमुखता प्राप्त हुई है।

(चतुर्थ सर्ग में राधा का परिचय और कृष्ण के साथ बाल लीलाओं का बड़ा मधुर चित्रण है। राधा के अतुल सौंदर्य के चित्रण में कवि ने सूक्ष्म चित्रण का परिचय दिया है। वे मृदु भाषिणी, मृगदृगी, माधुर्य-मूर्ति हैं :—

> "फूले कंज समान मंजु-दृगता थी मत्तता-कारिणी।
> सोने सी कमनीय-कान्ति तन की थी दृष्टि-उन्मेषनी॥
> राधा की मुसकान की मधुरता थी मुग्धता-मूर्ति सी।
> काली-कुंचित-लम्बमान-अलकें थी मानसोन्मादिनी॥"

राधाकृष्ण के प्रेम का विकास क्रमिक हुआ है। यों तो अनेक व्रजांगनाएँ कृष्ण को प्रेम दृष्टि से अवलोकती रही हैं, किन्तु राधा का विशेषरूप से कृष्ण की ओर झुकाव है। कृष्ण और राधा के गृह समीप हैं, दोनों का आना जाना रहा है। वस्तुतः प्रेम विकसित हो गया है। प्रणय विकास का प्रभाव देखिए—

> "परम तन्मय हो बहु प्रेम से,
> तब परस्पर थे वह खेलते।
> कलित-क्रीड़न से इनके कभी,
> ललित हो उठता गृह नन्द का।

उमड़ सी पड़ती छवि थी कभी,
वर निकेतन में वृष भानु के।"

गिरीश जी के ये शब्द सत्य हैं:—"यौवन काल आने पर स्वभावतः विचित्र सौन्दर्यशाली कृष्ण के प्रति राधा के हृदय में पहले आकर्षण और फिर प्रणय का संचार हुआ। वह अपने कोमल हृदय को तो श्रीकृष्ण के चरणों में अर्पित कर ही चुकी थीं, विधिपूर्वक पति रूप में वरण करने की भी उनकी कामना थी, किन्तु इस कामना-लता पर असमय ही तुषारापात हो गया; अक्रूर ने आकर रंग में भंग कर दिया। बेचारी बालिक का उल्लास-कुसुम विदलित हो गया। उसका वश चलता तो कृष्ण को न जाने देती, परन्तु एक तो अवधि कम, दूसरे कृष्ण जी ऐसे मानने वाले कब थे···· लाचार होकर राधा किसी सखी के साथ रात्रि में अपने आँसुओं की धारा से धरती भिगोती रहीं·······आतुर होकर उन्होंने यह भी चाहा कि सवेरा न हो, परन्तु प्रभात हुआ और व्रजधरा को भस्म कर देने वाला वह सूर्य निकला, जिसे व्यथिता राधा आग का गोला बता रहीं थीं और जिसके दिखाई पड़ने की भावना से ही वे इतनी भयभीत थीं·······कृष्ण व्रज से चले, राधा का जी मसोस कर रह गया।"×

छठे सर्ग में राधा पवन को दूत बनाकर कृष्ण के पास भेजती हैं। प्रारम्भ में कृष्ण की मधुर स्मृतियों का स्मरण कर ग्वाल बाल, समस्त व्रजवासी व्याकुल हैं। समस्त व्रज, कुंजों, पथों में कृष्ण की याद गूँज रही है। इस भाग में व्रजवासियों के औत्सुक्य, उत्साह, वेदना और असीम प्रेम के भावों की सुन्दर अभिव्यंजना है:—

"आना प्यारे महरसुत का देखने के लिए ही।
कोसों जाती प्रतिदिन चली ग्वाल की मंडली थी॥
ऊँचे-ऊँचे तरू पर चढ़े गोप छोटे अनेकों।
घंटों बैठे तृषित दृग से पंथ को देखते थे॥

× "महाकवि हरिऔध" पृष्ठ १६६।

आके बैठी निज सदन की मुक्त ऊँची छतों में ।
मोखों में औ पथदिशि बने दिव्य वातायनों में ॥
नाना भावों विवश विकला उन्मना नारियों की ।
दो ही आँखें सहस बन के देखती पंथ को थीं ॥"

ब्रज की नारियों की अतृप्त इच्छाएँ, अधीरता, प्रेम और व्याकुलता देखिए—

"आके कागा यदि सदन में बैठता था कहीं भी ।
तो तन्वंगा उस सदन की यों उसे थी सुनाती ॥
जो आते हों कुँवर उड़ के काक तो बैठ जा तू ।
मैं खाने को प्रतिदिन तुझे दूध औ भात दूँगी ॥"

× × × ×

राधिका का पवन-दूत चित्रण बड़ा ही मार्मिक है । इसमें कवि ने बड़ी तन्मयता से विरह में दग्धा राधा की अधीरता, आशंका, प्रेम, व्याकुलता चित्रित की है । वे पवन से अपना विरह निवेदन करते हुए कहती हैं:—

"प्यारी प्रातः पवन ! इतना क्यों मुझे है सताती ।
क्या तू भी है कलुषित हुई काल की क्रूरता से ॥

× × × ×

क्यों होती है निठुर इतना क्यों बढ़ाती व्यथा है ।
तू है मेरी चिर परिचिता तू हमारी प्रिया है ॥
मेरी बातें सुन मत सता छोड़ दे वामता को ।
पीड़ा खोके प्रणव्रजन की पुण्य होता बड़ा है ॥

× × × ×

मैं रो रो के प्रिय विरह से बावली हो रही हूँ ।
जाके मेरी सब दुख कथा श्याम को तू सुना दे ॥

× × × ×

जो ला देगी चरण रज तो तू बड़ा पुण्य लेगी।
पूता हूँगी परम उस को अंग में मैं लगाके॥
पोतूंगी जो हृदय वल में वेदना दूर होगी।
डालूँगी मैं शिर पर उसे आँख में ले मलूंगी॥"

सोलहवें सर्ग में राधा उद्धव संवाद बड़ा भावपूर्ण है। राधा कृष्ण विषयक अनेक मधुर स्मृतियों से उद्वेलित हो रही हैं। इस प्रसंग की विशेषता यह है कि अपने अगाध प्रेम, विरह, वेदना के साथ-साथ राधा अपनी शिष्टता, सौम्यता और संयम का परिचय भी देती हैं। ये मधुर स्मृतिएँ बड़ी मार्मिक और हृदय-स्पर्शी बन पड़ी हैं। सुकुमार राधा की परिस्थिति जन्य विरह वेदना देखिए—

"जो मैं कोई विहग उड़ता देखती व्योम में हूँ।
तो उत्कण्ठा विवश चित्त में आज भी सोचती हूँ॥
होते मेरे निवल-तन में पक्ष जो पक्षियों से।
तो यों ही मैं स-मुद उड़ती श्याम के पास जाती॥"

× × × ×

ए आँखें हैं, जिधर फिरतीं चाहती श्याम को हैं।
कानों को भी मुरलि-रव आज लौं लौ लगी है॥
कोई मेरे हृदय-तल को पैठ के जो विलोके।
तो पावेगा लसित उसमें कान्ति-प्यारी उन्हीं की॥

वास्तव में इस प्रकार की अनेक पंक्तियों में राधा का अनन्य प्रेम, विरह-वेदना, व्याकुलता के सम्मुख उद्धव का ज्ञानोपदेश चूर-चूर हो जाता है। उन्हें पूर्ण विश्वास हो जाता है कि राधा का रोम-रोम कृष्ण के प्रेम में रंगा हुआ है। अतः "चरण की रज ले हरिबंधु भी, परम-शांति-समेत विदा हुए।" सर्वत्र महाकाव्य राधा के विरह-अश्रुओं से सिंचित है।

यशोदा के माध्यम से वात्सल्य रस का स्रोत भी प्रवाहित मिलता है। पुत्र विछोह के कारण माता के हृदय में जिन आशंकाओं, भयों, और वेदनाओं का उत्थान-पतन चलता रहता है, उस भग्न हृदय का बड़ा मर्मस्पर्शी चित्रण "प्रियप्रवास" में मिलता है। दशम सर्ग में खिन्न हृदया

विनत-वदना, मोह मग्न यशोदा अपने वात्सल्य मिश्र हृदयोद्गार प्रकट करती हैं। इस सर्ग के १३ से लेकर १७ और २३ से ६५ तक सब मन्दाक्रान्ता छन्द यशोदा के वात्सल्य और उनके मधुर संस्मरणों से परिपूर्ण हैं। नन्द के अकेले लौटने पर वे कारुणिक विलाप कर उठती हैं:—

"प्रिय पति वह मेरा प्राण प्यारा कहाँ है?
दुःख जलनिधि डूबी का सहारा कहाँ है!
लख मुख जिसका मैं आज लौं जी सकी हूँ।
वह हृदय हमारा नेत्र तारा कहाँ है?

इस विलाप में माँ की ममता, बंधन, वात्सल्य का वर्णन बड़ा मार्मिक है। पंक्ति-पंक्ति में करुणा और वेदना का समुद्र लहरा रहा है। अतीत की सम्पूर्ण स्मृतिएँ यशोदा के मानस-पटल पर एक एक कर आती हैं—

"प्रतिदिन वह आके द्वार पै बैठती थीं,
पथ दिशि लखते ही बार को थीं बिताती।
यदि पथिक दिखाता तो यही पूछती थीं,
प्रिय सुत गृह आता क्या कहीं था दिखाया॥

× × × ×

प्रतिदिन कितने ही देवता, थीं मनाती।
बहु यजन कराती विप्र के वृन्द से थीं॥
नित घर पर नाना ज्योतिषी थीं बुलातीं।
निज प्रिय सुत आना पूछने को यशोदा॥

उद्धव जी से वे कृष्ण की कुशल-क्षेम पूछती हैं। मेरे प्यारे कृष्ण कुशल से तो हैं? उन्हें कोई चिन्ता तो मलीन नहीं करती? मुख पर म्लनता तो नहीं है? हृदतल में वेदनाएँ तो नहीं उठतीं? हा! उन्हें कौन प्रेम से मेवा, मिष्ठान, नवनीत, कजरी का दूध कौन पिलाता होगा? इसी प्रकार की कुछ कोमल वेदनाओं का चित्रण देखिए कितना मार्मिक बन पड़ा है—

छीना जावे लकुट न कभी वृद्धता में किसी का,
ऊधो कोई न कल-छल से लाल ले ले किसी का।
पूँजी कोई जनम भर की गाँठ से खो न देवे,
सोने का भी सदन न विना दीप के हो किसी का॥

× × × ×

ऊधो मेरी सदृश न कभी भाग फूटे किसी का,
मोती ऐसा रतन अपना आह! कोई न खोवे।

जब यशोदा यह सुनती हैं कि उनका पुत्र किसी दूसरे का लाडला होता जाता है, तो उन्हें मर्माहत दुःख होता है। वे चाहती हैं कि कम से कम एक वार तो कृष्ण अवश्य ब्रज आवें। उसकी इस दग्धावस्था को देखिए :—

"लोहू मेरे युगल दृग से अश्रु की ठौर आता।
रोएँ रोएँ सकल तन के दग्ध हो छार होते॥
आशा होती न यदि मुझको श्याम के लौटने की।
मेरा सूखा हृदय-तल तो सैकड़ों खंड होता॥

इसी प्रकार की करुण स्थिति ब्रज की गोपिकाओं की है। पन्द्रहवें सर्ग में उद्धव के सामने वन में एक गोपी की श्रीकृष्ण प्रेम सम्बन्धी उन्मत्तता दृष्टिगोचर होती है।

एक आलोचक ने उचित ही लिखा है, "करुण के चित्रण में उपाध्याय जी सिद्धहस्त हैं। गोप-गोपियों का कृष्ण के भ्रम में उद्धव को घेरना अत्यन्त स्वभाविक है। कहीं-कहीं व्यंजना का प्रयोग इस चतुराई से किया गया है कि सहज लक्षित नहीं हो पाती, जैसे राधा का ऐसे कुंजों में बैठना जो 'समावृता श्यामल पुष्प संकुला" थीं। भावों की व्यंजना भी कुछ स्थलों पर सटीक हुई है......"प्रियप्रवास" प्रेम के वियोग-पक्ष का करुण-निदर्शन है। इसमें प्रेम की आदर, सख्य, स्नेह, वात्सल्य, भक्ति, और प्रणय सभी वृत्तियों का चित्रण पूर्ण तल्लीनता से हुआ है।"*

---

* श्री विश्वम्भर "मानव" एम० ए०।

प्रकृति-वर्णन—

महाकाव्य में आने वाले सभी प्रतिपाद्य विषयों—संध्या, सूर्य, चन्
रजनी, प्रदोष, ऋतुएँ, पर्वत, वन इत्यादि सभी के विस्तृत वर्णन "प्रि
प्रवास" में उपलब्ध हैं। महाकाव्य का प्रारम्भ ही एक सुन्दर प्राकृति
दृश्य से किया गया है। प्रकृति के नाना रूपों,—वृक्षों, गुल्म, लताओं, व
के पशु-पक्षी, फल, निदाघ, चारों पहर, भिन्न ऋतुओं का निरीक्षण इ
काव्य में मिल जाता है। (इसे ऊपर से ठूँसा नहीं गया है, प्रत्युत इ
रखने के सहज स्वभाविक स्थान कवि ने प्राप्त कर लिए हैं) कृष्ण ‹
जीवन ग्रामों के वृक्ष, लताएँ, खेत चरागाह, यमुनातट पर व्यतीत हु
था। उसमें स्वतः प्रकृति के नाना रूपों का मधुर साहचर्य है। वस्तुतः इ
प्रकार के प्राकृतिक चित्रण का उपयुक्त अवसर प्राप्त हो गया है। अने
विस्तृत प्राकृतिक चित्रणों में कवि का हृदय तन्मय हुआ है। सुन्दर सु
न्धित पुष्पों, मधुर गुंजन करने वाले भौरों, रजनी, प्रभात, संध्याप‹
द्विघटी निशा, अर्द्धरात्रि, चतुर्थ प्रहर तारागण, चन्द्रमा, पक्षियों ‹
कलरव, सरिताओं का निनाद—ऋतुओं की कमनीयता, शोभा और स
ही भयंकरता, वृक्षों का वंश वर्णन, एकाकी और सपत्नीक प्राणी स
का सविस्तार चित्रण मिलता है।

"हरिऔध" के प्रकृति वर्णन को दो भागों में विभाजित किया
सकता है (१) कोरे वाह्य प्रकृति के चित्रण (२) पात्रों की मनोभावना‹
से अनुरंजित मानसिक विकारों से आन्दोलित प्रकृति वर्णन।

(वाह्य प्रकृति के वर्णनों में सूक्ष्म निरीक्षण मिलता है, जिनसे प्राकृति
दृश्यों का पूरा सजीव चित्र मानस-पटल पर अंकित हो जाता है)। आ
पास की वस्तुओं, प्रकृति के नाना अंगों की संश्लिष्ट योजना भी मिल
है। धीरे-धीरे आती हुई संध्या का बड़ा मनोहारी चित्र प्रथम सर्ग के प्रा‹
में ही मिलता है। इसमें लाल आकाश, तरुशिखाओं पर पड़ने वा
आभा, विपिन में होने वाले चिड़ियों के शब्द, वापस लौटते हुए प
वृन्द, चारों दिशाओं की लालिमा, हरियाली पर फैलती हुई लाली सरि
और तालाबों पर पड़ती हुई सांध्यकालीन रश्मियों का सुन्दर चित्

हुआ है। नवें सर्ग में मथुरा से गोकुल आते समय मार्ग की प्राकृतिक शोभा का बड़ा सूक्ष्म वर्णन मिलता है। ऊधो जिधर देखते हैं प्रकृति की छवि पर मन्त्र मुग्ध से हो जाते हैं। वृन्दावन का ऐसा विस्तृत चित्र कवि ने उपस्थित किया है कि यात्रा-सदृश्य आनन्द आता है:—

चूड़ाएँ जिसकी प्रशान्त-नभ में थीं दिखातीं दूर से।
ऊधो को सु-पयोद के पाटल सी सद्धम की राशि से।
सो गोवर्धन शैल-श्रेष्ठ अधुना था सामने दृष्टि के।
सत्पुष्पां सुफलों प्रशंसित-द्रुमों से दिव्य सर्वाङ्ग हो।

× × × ×

ऊँचा शीश सहर्ष शैल कट के था देखता व्योम को।
या होता अति ही स-गर्व वह था सर्वोच्चता दर्प से।
या वार्त्ता यह था प्रसिद्ध करता था सामोद संसार में।
मैं हूँ सुन्दर मान-दण्ड व्रज की शोभामयी भूमि का।

× × × ×

वृक्षों के वर्णन में कवि की विशदता, सूक्ष्मता और सत्यता श्लाघनीय प्रथम सर्ग का यह अंश देखिये—

जम्बू, अम्ब, कदम्ब, निम्ब, फलसा, जम्बीर औ आँवला।
लीची, दाड़िम, नारिकेल इमिली औ शिशपा इंगुदी॥
नारंगी, अमरूद, विल्व, वदरी, सागौन, शालादि भी।
श्रेणी-बद्ध तमाल ताल कदली औ शाल्मली थे खड़े।

× × × ×

ऊँचे दाड़िम से रसाल-तरु थे औ आम्र से शिंशपा।
यों निम्नोच्च असंख्य-पादप कसे वृन्दाटवी बीच थे।
मानों वे अवलोकते पथ रहे वृन्दावनाधीश का।
ऊँचा शीश उठा मनुष्य-जनता के तुल्य उत्कण्ठ हो॥

इसी प्रसंग में कवि ने अनेक लतिकाओं—जैसे मेधाविनी, माधवी, प्रलोभनीय, लवंगलतिका, असिता प्रियंगु, तपोरता, रक्तका, मंजुगुंजिका,

तथा मोर, कबूतर, तोता, शारिका, चकोरी आदि पक्षियों तथा बन्दर, चीते, अरने, बैल, सुरभी आदि पशुओं के विस्तृत वर्णन भी किए हैं:—

वनस्थली में पशुवृन्द थे घने
अनेक लीलामय औ लुभावने।

× × × ×

असेत-रक्तानन-वान ऊधमी।
प्रलम्ब-लांगूल विभिन्न लोम के।
कहीं महा-चंचल क्रूर कौशली
असंख्य शाखामृग का समूह था।
कहीं गठीले अरने अनेक थे
न-शंक भूरे शशकादि थे कहीं।

इसी प्रकार पन्द्रहवें सर्ग में प्रकृति की अतुल छवि का दिग्दर्शन बड़े आकर्षक रूप में कराया गया है। प्रातःकाल का सरस समय है; पुष्प एवं पल्लवों के सरस सौंदर्य में ऊधो मुग्ध हो रहे हैं। एक सुन्दर बाला आती है वह कृष्ण के प्रेम में उन्मत्त है। इस गोपिका को "हरिऔध" जी ने सुन्दर प्राकृतिक दृश्यों के मध्य चित्रित किया है। यहाँ सुमन शिशुओं से समस्त उपवन जगमगा रहा है। बालिका कभी जूही से बातें करती है, तो कभी पाटल, बेला और चमेली से प्यार निवेदन करती है। वास्तव में इस दृश्य की उपयोगिता सुन्दर बाह्य चित्रण मात्र ही है। बाह्य सृष्टि के साथ कवि की सहृदयता भी जुड़ी हुई है। इस प्रकार के लम्बे-लम्बे वर्णनों में कवि का सूक्ष्म निरीक्षण और संश्लिष्ट योजना पाई जाती है।

२—मनोविकारों से अनुरंजित प्रकृति चित्रण:—

द्वितीय वर्ग में "प्रिय प्रवास" के वे प्रकृति वर्णन आते हैं, जो विविध पात्रों (जैसे यशोदा, राधा, या गोपिकाओं) के आन्तरिक भावों से अनुरंजित हैं। विविध भावों से अभिभूत—रति, शोक, विरह, भय, घृणा, उत्साह, आश्चर्य से अनुरंजित प्रकृति चित्रण इस महाकाव्य की विशेषता है। पात्रों के मनोभावों की उद्दीपन की दृष्टि से प्रकृति नाना

मनोभावों से रंगी हुई है। मुख्यतः दो भावों की प्रधानता है। प्रणय कथा होने के कारण एक तो रति भाव, पर विरह प्रधान होने से करुणा से अभिभूत। हर्ष, उल्लास, आनन्द से अनुरंजित चित्र कम हैं।×

रति भाव से अनुरंजित प्रकृति के विशद चित्र १५ वें सर्ग में बहुत आये हैं। एक गोपी श्रीकृष्ण प्रेम में उन्मत्त है। वियोग शृङ्गार के उत्तम उदाहरण हमें चतुर्थ सर्ग से ही मिलने लगते हैं। राधा रोते-रोते अपनी दुःख कथा अपनी सखी ललिता से इस प्रकार कहती हैः—

> "सखि लख यह मेरी खिन्नता तू कहेगी,
> प्रिय स्वजन किसी के क्या न जाते कहीं हैं!
> पर हृदय न जानें दग्ध क्यों हो रहा है
> सब जगत हमें है शून्य होता दिखाता॥
> यह सकल दिशाएँ आज रो सी रही हैं।
> यह सदन हमारा, है हमें काट खाता।
> मन उचट रहा है चैन पाता नहीं है।
> विजन-विपिन में है भागना-सा दिखाता॥

राधा को समस्त प्रकृति दुःख एवं अकथित वेदना में निमग्न निष्प्रभ दग्ध प्रतीत होती है। कुछ पंक्तियाँ बड़ी मर्मस्पर्शी बन पड़ी हैंः—

---

× १—"प्रियप्रवास" में प्रकृति के प्रति रतिभाव से अभिभूत प्रवृत्ति का प्रावल्य पाया जाना चाहिये और वह प्रचुर मात्रा में विद्यमान भी है, परन्तु यह प्रणय कथा आदि से अन्त तक करुण है। इसलिए इसमें प्रकृति का उल्लासपूर्ण भाग दृष्टिगोचर नहीं होता"—गिरीश जी

२—ग्रन्थ का आरम्भ सन्ध्या के चित्रण के साथ हुआ है, जिसमें कथा के मलीन होने का संकेत है "दिवस का अवसान समीप था"—इस पहली पंक्ति में सुख के दिवस का अंत होने की ओर संकेत है"

—डा० रामकुमार वर्मा

३—"प्रकृति कृष्ण वियोग में खिन्न तो दिखाना ही था, पर उसे कहीं-कहीं उदासीन भी चित्रित किया गया है"

—श्री विश्वम्भर "मानव" एम० ए०

"बहु-ध्वनि कलरव की पैल भी क्यों गई है।
खग-गन मन मारे आज क्यों यों गए हैं।
अवनि अति दुखी-सी क्यों हमें है दिखाती।
नभ पर दुख छाया-पात क्यों हो रहा है॥
अहह खिरकी में क्यों छिपे देखती हूँ
मलिन मुख किसी का क्यों मुझे है सताता।
जल जल किसका है छार होता कलेजा।
निकल निकल आहें कौन की बेधती हैं॥

× × × ×

नव नभ-तल-तारे जो उगे दीखते हैं
यह कुछ ठिठके से मौन में क्यों पड़े हैं।
ब्रज दुख लख के हुए हैं क्यों दुखारी
कुछ व्यथित बने से या हमें देखते हैं।
रह रह किरणें जो फूटती हैं दिखाती।
वह मिस इनके क्या बोध देते हमें हैं।
कर वह अथवा यों शान्ति का हैं बढ़ाते।
विपुल व्यथित जीवों की व्यथा मोचने को॥

× × × ×

दुख अनल शिखाएँ व्योम में फूटती हैं।
यह किस दुखिया का है कलेजा जलाती।
अहह अहह देखो टूटता है न तारा
पतन दिल जले के गात का हो रहा है॥

प्रकृति के अनेक चित्र, रूप, पुष्प इत्यादि गोपियों तथा राधा को अनायास ही श्रीकृष्ण की मूर्ति का स्मरण करा देते हैं। पात्रों की अनेक आकांक्षाओं के रूप प्रकृति में तादात्म्य प्राप्त कर रहे हैं। प्रकृति जहाँ उनके मनोविकारों को भड़काती है, वहाँ उनके आन्तरिक भावों की प्रतिच्छाया भी प्रस्तुत करती है। एक गोपी के मार्मिक वचन देखिए—

"कालिन्दी का पुलिन मुझको उन्मना है बनाता
प्यारी प्यारी जलद-तन की मूर्ति है याद आती ॥"

× × × ×

ऐसी कुंजें ब्रज अवनि में हैं अनेकों जहाँ जा
आ जाती है युगल दृग के सामने मूर्ति प्यारी।
नाना लीला ललित जसुदा लाल ने की जहाँ है
ऐसी ठौरों ललक दृग हैं आज भी लग्न होते ॥"

राधा की कृष्ण-मिलन की आकांक्षा का एक मनोहारी चित्र देखिए—

"जो मैं कोई विहग उड़ता देखती व्योम में हूँ
तो उत्कण्ठा-विवश चित्त में आज भी सोचती हूँ।
होते मेरे निबल तन में पक्ष जो पक्षियों से
तो यों ही मैं समुद उड़ती श्याम के पास जाती ॥

ऋतु-वर्णन—

"प्रियप्रवास" में वर्षा, शरद, ग्रीष्म आदि ऋतुओं के विस्तृत वर्णन हैं। इन में भी पात्रों या कथाभाग में प्रयुक्त मनोभाव के अनुसार भावों का आन्दोलन है। ऋतुएँ प्रायः भावोद्दीपन का कार्य करती दिखाई गई हैं। करुणा, कर्कशता, आद्रता, कमनीयता, मधुरता आदि भावों से रंगी हुई ऋतुएँ चित्रित की गई हैं।

कुपित प्रकृति का एक चित्र देखिए:—

"उपल वृष्टि हुई तम छा गया
पट गई महि कंकर पात से।
गड़गड़ाहट वारिद--व्यूह की
ककुभ में परिपूरित हो गई ॥

× × × ×

मुख समस्त रजोमय हो गया,
भर गये युग-लोचन धूलि से।
पवन-वाहित पांशु प्रहार से,
गत बुरी ब्रज-मानव की हुई ॥

गिर गया इतना नभ तोम था,
दिवस था जिससे निशि हो गया ।
स्वन प्रभंजन औ घन-नाद से,
काँप रही ब्रज-भूमि समस्त थी ॥

ग्रीष्म ऋतु का चित्र कितना भयंकर उतरा है:—

तवा सम थी तपती वसुन्धरा,
स्फुलिंग वर्षारत तप्त व्योम था ।
प्रदीप्त थी अग्नि हुई दिगन्त में,
ज्वलन्त था आतप ज्वाल-माल सा ॥
पतंग की देख महा-प्रचण्डता,
प्रकम्पिता पादप-पुंज-पंक्ति थी ।
रजास्त आकाश दिगन्त को बना,
विमर्दती वात असंख्य वृक्ष को ॥
मुहुर्मुहुः उत्तप्त हो निनादिनी,
प्रवाहिता थी पवनाति-भीषणा ।
विदग्ध हो के कण धूलि राशि का,
हुआ तपे लोह कणों समान था ॥
प्रतप्त-वालू इव दग्ध-भाड़ की,
भयंकरी थी महि रेणु हो गई ।

वर्षा की एक झांकी देखिए । कवि ने कैसे क्रमिक विकास से वर्षा का पड़ना, फिर तेज होना, अन्ततः सब का जलमय हो जाना चित्रित किया है:—

"प्रथम बूँद पड़ी ध्वनि-घोष से
फिर लगा ; पड़ने जल वेग से ।
प्रलय कालिक सर्व-समा दिखा
बरसता जल-मूसल-धार था ॥

× × × ×

सब जलाशय थे जल से भरे
इसलिए निशि वासर मग्न ही।
जल-मयी व्रज-मेदिनि हो गई
मधुर-ग्राम लगे बहु डूबने ॥

शरद ऋतु का एक चित्र देखिए—

"अत्युज्वला पहन तारक-मुक्त-माला
दिव्यांबरा बन अलौकिक कौमुदी से।
शोभाभरी परम मुग्धकरी हुई थी,
राका-कलाकर-मुखी रजनी-पुरन्ध्री ॥"

बसन्त का एक संक्षिप्त चित्र देखिए—

"सुकोपलें थीं तरु-अंक में लसी,
स-अंगरागा अनुराग-रंजिता ।"

## दुखों से तटस्थ प्रकृति के चित्रः—

प्रकृति के अलंकारिक बाह्य वर्णनों या भावों से अनुरंजित स्वरूपों के अतिरिक्त "हरिऔध" ने अंग्रेजी कवि मैथ्यू आनल्डि की भाँति कुछ ऐसे भी चित्र अंकित किए हैं, जिनमें प्रकृति पात्रों के मनोभावों से सर्वथा तटस्थ या पृथक ( Indifferent ) रहता है। पात्र दुःखी हैं, किन्तु प्रकृति उनसे समवेदना प्रकट नहीं करती। उसमें कोई अन्तर नहीं आता चाहे पात्रों में शोक हो या उत्साह क्यों न हो। पंचदश सर्ग में गोपिका की अन्तर्व्यथा को पुष्प, वृक्ष, अलि नहीं समझ पातेः—

"तदपि इन सबों में ऐंठ देखी बड़ी ही
लख दुखित-जनों को ए नहीं म्लान होते।
चित-द्रवित न होता है व्यथा-अन्य-द्वारा
बहु-भव-जनितों की वृत्ति ही ईदृशी है ॥ (१५-६१)

× × × ×

अयि अलि ! तुझमें भी सौम्यता हूँ न पाती
मम-दुख सुनता है चित्त देके नहीं तू।

अति चपल बड़ा ही ढीठ औ कौतुकी है
थिर तनिक न होता है किसी पुष्प में भी ॥ (६३)

**प्रकृति के उन्नायक स्वरूप का चित्रण—**

प्रकृति का सबसे उन्नत रूप वह है जहाँ प्रकृति उच्च आध्यात्मिक गुणों—( शान्त, आनन्द, अमरता, जीवन शक्ति ) से परिपूर्ण दिखाई गई है। राधा प्रकृति में दिव्य दर्शन कर अमित शान्ति प्राप्त करती हैं। उनकी चंचलता, नष्ट होकर दिव्य शक्ति के दर्शन होते हैं। भौतिक दृष्टिकोण से ऊँचा उठ उच्चतम दैवी भूमिका में प्रविष्ट कराने वाले प्रकृति के वर्णन हरिऔध जी को वर्डसवर्थ ( Wordsworth ) के रहस्यवादी स्वरूप के समकक्ष ला खड़ा करते हैं। प्रकृति एवं परमात्मा का बड़ा मंजुल समन्वय अभिव्यक्त किया गया है। राधा एक विरहणी को सान्त्वना देती है:—

"तेरा होना विकल दयिते बुद्धि-मत्ता नहीं है।
क्या प्यारे की वदन छवि तू इन्दु में है न पाती ॥"

× × × ×

"मैं होती थी व्यथित अब हूँ शान्ति सानन्द पाती।
प्यारे के पांव मुख मुरली नाद जैसा उन्हें पा ॥"

संक्षेप में "प्रियप्रवास" में प्रकृति नाना रूपों में चित्रित की गई है। ये प्रकृति वर्णन इस महाकाव्य की गरिमा के अनुकूल बड़े मर्म स्पर्शी बन पड़े हैं।

**चरित्र-चित्रण :—**

"प्रियप्रवास" के प्रधान नायक श्रीकृष्ण हैं। श्रीकृष्ण को आदर्श महापुरुष के रूप में चित्रित किया गया है। रीतिकाल में श्रीकृष्ण को शृंगार का आलम्बन बना कर वासना-मूलक कविता की सृष्टि हुई थी। कृष्ण के माध्यम से कवियों को अपनी वासनाओं एवं दुर्बल मनोविकारों को प्रकट करने का अवसर प्राप्त हो गया था। "हरिऔध" ने श्रीकृष्ण के चरित्र को पुनः यथार्थ रूप में अभिव्यंजित किया। उनमें आदर्श समाजसेवी पर दुःखकातर आदर्श महापुरुष की कल्पना साकार की गई। "हरिऔध"

जी के श्रीकृष्ण जहाँ मनोहारिणी आकृति, शारीरिक सौन्दर्य के पुंज, तथा मानसिक गुणों से सम्पन्न हैं, वहाँ वे निस्पृह समाज-सेवक, दृढ़निश्चयी कार्य कर्त्ता जातीय भावों से युक्त लोक-सेवक भी हैं। हरिऔध जी ने कृष्ण को लोकहितकारी, समाज सेवी, सदाचारी लौकिक महापुरुष का रूप दे दिया है।* वे धर्म या जाति के उद्धारक के रूप में हमारे समक्ष उपस्थित होते हैं:—

"स्वजाति उद्धार महान् धर्म है।"
या
बढ़ो, करो वीर स्वजाति का भला

वे मानववाद के प्रचारक, वृत्तियों के उदात्त और जाति-धर्म के उद्धारक के रूप में चित्रित हैं। उनके सम्बन्ध की अलौकिक घटनाओं को भी बौद्धिक दृष्टि से यथार्थता प्रदान करने की चेष्टा की गई है जैसे ऊँगली पर गोवर्धन धारण के लिए कहा गया है:—

"लग्न अपार प्रसार, गिरीन्द्र में,
व्रज धराधिप के प्रिय पुत्र का।
सकल लोग लगे कहने उसे,
रख लिया है उँगली पर श्याम ने॥

उनमें प्रेम, कर्त्तव्य और लोकहित की सर्वत्र प्रधानता चित्रित की गई है। लोकहित की दृष्टि से उनमें मानवता, सामजिकता और उपकारशीलता का अधिक समावेश हुआ है।

---

* "आज बौद्धिक युग में जब कि तिल का ताड़ बनाया जाता है और बाल की खाल निकाली जाती है, हरिऔध ने कृष्ण-भक्तिपरक, अलौकिक लीलाओं को विश्वसनीय एवं ग्राह्य बनाने के लिए लोक हितकारी, लौकिक रूप दे दिया है। उनकी गोपिकाएं न केवल कृष्ण के मनोहारी रूप और चापल्य पर मुग्ध हैं, वरन् उनकी सेवाओं, सदाचरण और परोपकारी उदात्त,भावनाओं से सब के हृदय जीत लिये हैं।

—श्री शचीरानी गुर्टू, एम० ए०

राधा एक सुन्दर, सुकुमारी, सहृदया बालिका है जो अल्प वयस से ही कृष्ण के प्रति अनुरक्त हो गई है। उनके प्रेम का विकास क्रमशः हुआ है। "प्रियप्रवास" राधा के विरह के अश्रुओं से सिंचित है। उनकी विशेषता यह है कि प्रेम में भी वे मर्य्यादा और संयम का सदैव ध्यान रखती हैं। उनका प्रेम विस्तृत हो कर जगत्‌हित कामना में समा जाता है। उनका यह वचन उनके चरित्र को बहुत ऊँचा उठा देता है:—

"प्यारे जीवें, जग हित करें, गेह चाहे न आवें।

कर्त्तव्य और लोकहित का यह रूप राधा को महान् बना देता है। उनका प्रेम विश्वमय हो जाता है। यही नहीं वे अन्य दुखी विरह विदग्धा गोपिकाओं को मोह से छुड़ा कर त्याग का पाठ पढ़ाती हैं -

यशोदा में अपने कृष्ण के प्रति असीम वात्सल्य भरा हुआ है। उनके चले जाने पर माता यशोदा का विलाप, अधीरता, ममता, वेदना, आशंका, कवि ने बड़ी मार्मिकता से अंकित किए हैं। उनकी ये पंक्तियां प्रत्येक बालक की जिह्वा पर रहती हैं—

"प्रिय पति वह मेरा प्राण प्यारा कहाँ है?
दुख जलनिधि मग्ना का सहारा कहाँ है?
लख मुख जिसका मैं आज लौं जी सकी हूँ।
वह हृदय हमारा नेत्र तारा कहाँ है?

उद्धव संदेश वाहक हैं। ज्ञान का प्रतिपादन वे बड़ी कुशलता से करते हैं। अन्य गौण पात्र भी मार्मिकता से अंकित किए हैं। पात्रों की आन्तरिक मनः स्थितियों का बड़ा मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

शैली—

उपाध्याय जी ने अपने वर्णनों में यह ध्यान रखा है कि उन्हीं स्थलों का वर्णन विस्तृत हो जो मार्मिक हैं। कलापक्ष एवं भाषा अलंकार की दृष्टियों से "प्रियप्रवास" उत्कृष्ट रचना है। यह विद्वानों एवं काव्य ज्ञान पारखी पाठकों के लिए विशेष रूप से लिखा गया है। इसमें संस्कृत के वर्ण-वृत्तों जैसे मालिनी, मन्दाक्रान्ता वंशस्थ, वसंततिलका, द्रुतविलम्बित,

शार्दूल-विक्रीड़ित तथा शिखरिणी आदि छन्दों के नवीन खड़ी बोली हिन्दी में प्रयोग हैं। शब्दालंकारों में छेकानुप्रास, वृत्यानुप्रास, अन्त्यानुप्रास, यमक आदि तथा अर्थालंकारों में उपमा, उत्प्रेक्षा, अपन्हुति, सन्देह, आदि के बड़े कलात्मक प्रयोग किए गए हैं। उपमा का एक उदाहरण देखिए—

"मृदुल कुसुम-सा है औ तूने तूल सा है।
नव किसलय-सा है स्नेह के उत्स-सा है॥
सदय हृदय ऊधो श्याम का है बड़ा ही।
अहह हृदय माँ के तुल्य तो भी नहीं है॥

उत्प्रेक्षा का सौन्दर्य निम्न अवतरण में देखिए—

"यह अभावुकता तम पुंज की
सह सकी नहिं तारक-मण्डली।
वह विकाश-निवर्द्धन के लिए
निकलने नभ-मण्डल में लगी॥
तदपि दर्शक--लोचन--लालसा
फलवती न हुई तिलमात्र भी।
नयन की लख के यह दीनता
सकुचने सरसीरुह भी लगे॥

भाषा की दृष्टि से इसमें संस्कृत शब्दों का बाहुल्य है। द्रुतविलम्बित, वसन्ततलिका और वंशस्थ में समासमयी पदयोजना देखने योग्य है। अतुकान्त होते हुए भी इसका माधुर्य कम नहीं है। "मानव" जी के शब्दों में, "गणों में बन्धन चाहे कितना ही हो, पर एक-एक पंक्ति उस बंधन की तपस्या में निखर कर, खराद पर तराशी जा कर एक विचित्र गति और माधुर्य झलका देती हैं।"

रूढ़िवादी दृष्टिकोण से "प्रियप्रवास" में महाकाव्य के सब लक्षण प्राप्त हो जाते हैं। इसमें १७ सर्ग हैं, नायक कृष्ण उत्तम वंश का धीरोदत्त गुणों के क्षत्रिय हैं, शृंगार एवं करुण रसों की प्रधानता है, वृत्त पौराणिक है, खलों की निन्दा है; वर्णनों में महाकाव्य में आने वाली सभी वर्णनीय

वस्तुओं का वर्णन हो गया है; नायक के नाम पर नाम "प्रियप्रवास" है। कृष्ण सबके प्रिय हैं। उनका प्रवास तथा उससे उत्पन्न करुण स्थिति का परिचय कराया गया है। लेकिन इसकी प्रबन्धात्मकता खंडित है। एक सर्ग से दूसरा सम्बद्ध नहीं है; भावी सर्ग की कोई सूचना नहीं मिलती। स्वतन्त्र कथानक और सम्बन्ध शक्ति की हीनता के कारण "प्रियप्रवास" एक असफल प्रयोगवादी रूढ़िवादी महाकाव्य कहला सकता है।

## ( २ ) वैदेही-वनवास

"हरिऔध" जी का द्वितीय महाकाव्य "वैदेही-वनवास" अधिक परिष्कृत और सरस है। "प्रियप्रवास" की अपेक्षा यह जन मानस के अधिक समीप है। उसी प्रकार मुख पृष्ठ पर अङ्कित कर दिया गया है "करुण-रस प्रधान महाकाव्य" जिसका तात्पर्य है कि कवि ने जानबूझकर "साहित्यदर्पण" में दिये हुए लक्षणों के निर्वाह का प्रयत्न इस काव्य में करने का प्रयत्न किया है।

१—सर्गबन्धता:—इस दृष्टि से इस महाकाव्य की कथा अठारह सर्गों में बँधी हुई है। प्रथम सर्ग में उपवन, गर्भवती वैदेही और राम की लोकहित और पूर्ण सुख पर वार्ता; दूसरे में वैदेही पर आरोपित लोकापवाद, तीसरे में अपवाद को दूर करने के लिए वैदेही को भेजने की मन्त्रणा, चौथे में राम वशिष्ठाश्रम में जाकर सम्मति लेना, पाँचवें में राम का लोकापवाद शान्त करने के लिये सीता को वाल्मीकि आश्रम की योजना समझाना, छठे में वैदेही की विदाइ, सातवें में मुनि आश्रम को मंगल-यात्रा, आठवें में आश्रम प्रवेश, नवें में अवध-धाम, दशम सर्ग में तपस्विनी आश्रम, ग्यारहवें में लवकुश जन्म, बारहवें में नामकरण संस्कार, तेरहवें में लवकुश का विकास और आत्रेयी का प्रस्थान, चौदहवें में वैदेही द्वारा भौतिकवाद का खण्डन और आध्यात्मवाद का महत्व वर्णन, पन्द्रहवें में वैदेही का पुत्रों को शिक्षा, सोलहवें में राम का अश्वमेध की सूचना, सत्रहवें में गोदावरी के तट पर वैदेही का मिलन, अठारहवें में वैदेही का पुत्रों सहित आना और राम के चरण छूते ही दिव्य ज्योति में बदल जाना वर्णित है।+

---

+ विस्तार के लिये देखिये श्री श्याम जोशी एम० ए० कृत "हरिऔध और वैदेही-वनवास" पृष्ठ २७

कथानक का निर्माण मूलतः "वाल्मीकि रामायण", उत्तर रामचरित, तथा "रघुवंश" से हुआ है किन्तु स्वयं कवि ने मौलिक रूप में कथानक को विकसित किया है। लोक प्रसिद्ध कथा का आधार पौराणिक होते हुए भी नए रूप में प्रस्तुत किया गया है।" सामायिकता पर दृष्टि रखकर इस ग्रन्थ की रचना हुई है, अतएव इसे बोधगम्य और बुद्धिसंगत बनाने की चेष्टा की गई है। इसमें असम्भव घटनाओं और व्यापारों का वर्णन नहीं है।" ×

२—भाव-व्यंजनाः—"प्रियप्रवास की भाँति यह महाकाव्य भी श्रृङ्गार एवं करुण-रसों से परिपूर्ण है। यद्यपि स्वयं राम के कहने से ही वियोग की उत्पत्ति होती है—

इच्छा है कुछ काल के लिए तुमको स्थानान्तरित करूँ।
इस प्रकार उपजा प्रतीति मैं प्रजापुंज की भ्रान्ति हरूँ॥

तथापि कवि ने प्रवास-जन्य वियोग का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया है। अतः वैदेही-वनवास" विप्रलम्भ श्रृङ्गार प्रधान महाकाव्य है। वैदेही उस ज्वालामुखी की भाँति हैं, जो अन्दर ही अन्दर अग्नि से सुलगता-तपता रहता है। वे स्वभाव से संयमी, शान्त और गम्भीर हैं। अतः वेदना में व्याकुल होकर साधारण कोटि असंयमी नायिकाओं की तरह हाहाकार नहीं करतीं, प्रत्युत विरह ताप को दृढ़ता और संयम से सहन करती हैं। उनके विषय में यह सम्मति उचित है:—

"वैदेही का विरह वह ज्वाला नहीं है जिस पर औंधी की हुई शीशी का गुलाब बीच ही में सूख जाय, किन्तु वह भस्मि के ढेर में छुपी हुई उस चिनगारी के समान हैं, जो वायु के झोंके से एक बार चमक कर फिर मन्द पड़ जाती है। वैदेही का विलाप विरहिणी नागमती का विलाप नहीं है जो पशु पक्षियों तक को व्याकुल कर देता है; किन्तु वह जगज्जननी का विलाप है, जिसका अनुमत केवल दो बूँद आँसू की बूँदों में किया जा सकता है।"*

---

× श्री हरिऔध "वैदेही-वनवास" भूमिका
* श्री श्याम जोशी एम० ए०

उनका मर्यादा एवं संयम की शृङ्खलाओं से भग्न हुआ विरह-ताप कवि ने तूलिका के चार स्पर्शों से इस प्रकार अभिव्यक्त किया है—

सीता देवी ने उनको
परमादर से बैठाला।
लोचन में आये जल पर
नियमन का पर्दा डाला ॥ (११-४६)

किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं कि सीता की विरह वेदना किसी प्रकार भी न्यून है। नहीं, कदापि नहीं। अपने प्राणेश्वर का कुशल समाचार प्राप्त करने के लिए उनकी व्याकुलता यत्र-तत्र बिखरी पड़ी है। उनका पति-वियोग कवि ने अत्यन्त मर्मस्पर्शी शैली से अभिव्यक्त किया है। कुछ अंश देखिये—

"फिर कहा तात बतलादो।
रघुकुल-पुंगव हैं कैसे ?
जैसे दिन कटते थे क्या
अब भी कटते हैं वैसे ?

चन्द्रिका को सम्बोधन कर वे अपना विरहोन्माद निम्न पंक्तियों में अभिव्यक्त करती हैं—

ऐसी कौन न्यूनता मुझ में है,
जो विरह सताता है।
सिते ! बता दो मुझे क्यों नहीं,
चन्द-वदन दिखलाता है।"

× × × ×

सेवा उसकी करूँ साथ रह,
जी से जिसकी दासी हूँ।
हूँ न स्वार्थरत, मैं पति के—
संयोग-सुधा की प्यासी हूँ।

नीले-नीले मेघों का अवलोकन कर वैदेही को प्रिय का स्मरण हो आता है। वह अपने प्रियतम का सादृश्य उसमें पाती है।

"वह सोच रही थी प्रियतम—
तन सा ही है मन सुन्दर ॥
वैसा ही है दृग-रंजन ।
वैसा ही महा-मनोहर ॥

+ × × ×

वैदेही के मानसिक तादात्म्य का भावविभोर चित्रण देखिए—

जिस समय जनकजा वन की
अवलोक दिव्य - श्यामलता
श्री प्रियतम ध्यान-निमग्ना,
कर दूर चित्त-आकुलता ॥ ११—८४

द्वितीय स्थान करुण-रस की अभिव्यंजना को मिला है। दुर्मुख के मुख से लोकापवाद की कटु बात सुनकर राम चिंतित हो जाते हैं। यहाँ से ही गौण रूप में करुण परिस्थितियों का निर्माण हो जाता है। राम चिन्ता से म्लान हो जाते हैं। उनकी सजीवता विलीन हो जाती है। वे वशिष्ठ जी से परामर्श करने जाते हैं तब भी भावी आपत्ति की आशंका मन पर काले बादलों की तरह बनी रहती है। जब सीता जी से वनवास की बात की जाती है, तो वे बात को सम्हाल नहीं पातीं। प्रियतम राम से पृथक् रह कर विरह-वेदना सहन करना उन्हें दुष्कर प्रतीत होता है:—

"जनक-नन्दिनी ने दृग में आते आँसू को रोक कहा।
प्राणनाथ सब तो सह लूँगी, क्यों जायेगा विरह सहा ॥
सदा आपका चन्द्रानन अवलोके ही मैं जीती हूँ।
रूप-माधुरी-सुधा तृषित बन चकोरिका सम पीती हूँ ॥

समस्त काव्य में वैदेही का बड़ा करुण चित्र उपस्थित किया गया है। आशंका, चिन्ता, व्यग्रता, विरह की असह्य वेदना संयम के बाँध में बँधी हुई हैं। प्रियतम की मधुर स्मृतियाँ आ-आ कर उनका हृदय उद्वेलित करती हैं:—

"मैं प्रति दिन अपने हाथों से
सारे व्यंजन रही बनाती ॥

पास बैठ कर पंखा झल-झल
प्यार सहित थी उन्हें खिलाती ॥"

कौशल्या जी का हृदय भी पीड़ा, असमर्थता एवं वेदना से करुणा की उत्पत्ति में सहायक होता है। कौशल्या की वेदना सिक्त कुछ पंक्तियाँ देखिए:—

"किन्तु नहीं रोके रुकता है।
आँसू आँखों में आता ॥
समझाती हूँ पर मेरा मन
मेरी बात नहीं सुन पाता ॥"

"वैदेही-वनवास" के गीतों में करुण-रस की धारा प्रवाहित हो उठी है। "आकुल आँखें तरस रहीं"—वाला गीत विशेष मर्मस्पर्शी बन पड़ा है। इसके अतिरिक्त लव कुश की क्रीड़ा के वर्णन में वात्सल्य के उत्कृष्ट उदाहरण मिलते हैं। मध्य में यत्र-तत्र शान्त रस और आध्यात्म के चित्रण मिलते हैं।

३—प्रकृति चित्रण:—तटस्थ रहकर प्रकृति का माधुर्य उड़ेलने वाले अनेक चित्र "वैदेही-वनवास" में उपलब्ध हैं। कवि को प्रकृति के सामंजस्य के स्थान भी अनायास ही प्राप्त हो गए हैं, जैसे वशिष्ठ और वाल्मीकि के आश्रम। इन्हें प्रकृति के प्रांगण में चित्रित किया गया है। प्रकृति वर्णन का कौशल "हरिऔध" का असंदिग्ध है। आश्रमों के कुछ भाग देखिए:—

"मन्द मन्द गति से गयन्द चल चल कहीं।
प्रिय कलभों के साथ केलि में लग्न थे ॥
मृग-शावक थे सिंह सुअन से खेलते।
उछल-कूद में रत कपि मोद निमग्न थे ॥

× × × ×

कमल-कोष में कभी बद्ध होते न थे।
अन्धे बनते थे न पुष्प-रज से भ्रमर ॥

काँटे थे न छेदते उनके गात को।
नहीं तितलियों के पर देते थे कतर॥

"हरिऔध" जी ने "प्रियप्रवास" की भाँति इस महाकाव्य में भी चंचल प्रकृति का बड़ा सजीव वर्णन किया है। सीताजी का रथ वनवास में उन्हें ले जा रहा है, तो मार्ग का बड़ा चित्रोपम दृश्य उपस्थित कर दिया गया है। यह दृश्य इतना सूक्ष्म और विस्तृत ( Detailed ) है कि समस्त चित्र मानस-पटल पर अंकित हो जाता है।

कुछ वर्णन केवल तालिका मात्र से भरे हैं। लेकिन कहीं-कहीं ( जैसे दशम सर्ग में चाँदनी और ग्यारहवें सर्ग में वर्षा वर्णन ) प्रकृति का उद्दीपन के रूप में भी किया गया है। कहीं-कहीं सुख-दुःख से रंजित संवेदनात्मक रूप के भी चित्र हैं। जैसे गोदावरी का एक दुःख भरा रूप इस प्रकार चित्रित किया गया है:—

कल-निनादिता केलि-रती गोदावरी।
बनती रहती थी जो मुग्धकारी बड़ी॥
दिखलाती थी उस वियोग-विधुरा-समा।
बहा बहा आँसू जो भू पर हो पड़ी॥

यही नहीं प्रत्युत प्रकृति द्वारा उपदेश देने की प्रवृत्ति भी प्रकट हुई है। जैसे—

है स्वभावतः प्रकृति विश्वहित में रत रहती।
इसी लिए है विविध स्वरूपवती अति महती॥

इसके अतिरिक्त उपयुक्त वातावरण की सृष्टि के लिए भी प्रकृति का चित्रण किया गया है। कहीं-कहीं यह प्राकृतिक वातावरण रस-सृष्टि में प्रयुक्त हुए हैं। संक्षेप में शुद्ध प्रकृति चित्रण, उद्दीपन, संवेदनात्मक लोक शिक्षण और वातावरण निर्माण—सभी प्रकार का विशद प्राकृतिक वर्णन इस महाकाव्य में उपलब्ध हो जाता है।

४—चरित्र-चित्रण:—पतिव्रता वैदेही इस महाकाव्य की प्रमुख पात्री हैं। उन्हीं के चरित्र को आदर्शात्मकता, सात्विकता, कोमलता और विरह-वेदना की अभिव्यक्ति के हेतु इसका निर्माण हुआ है। राम के

प्रति उनका अनन्य प्रेम है, करुणा और दया से उनका हृदय परिपूर्ण है; वे आध्यात्म-पथ को मानव कल्याण के निमित्त श्रेयस्कर समझता है:—

उदारता से भरी सदाशयता-रता।
सद्भावों से भौतिकता की बाधिका॥
पुण्यमयी पावनता भरिता सद्मना।
आध्यात्मिकता ही है भव हित साधिका॥

"प्रिय-प्रवास" के कृष्ण-राधा की तरह सीता-राम भी सर्वस्व त्याग कर लोकहित-रत हैं। जनता की शंकाओं का समाधान करने के हेतु ही राम अपनी प्राण प्रिया को वनवास देते हैं।

श्री राम बुद्धिमान्, प्रजापालक और सहृदय पति हैं। जहाँ एक ओर वे पत्नी को प्राणों से भी अधिक प्रेम करते हैं, वहां जनता की इच्छाओं की भी उपेक्षा नहीं करना उचित समझते। वे लोक रक्षा के पक्षपाती हैं। लोक मंगल, जनता की निस्पृह सेवा, व्यक्तिवाद का महत्व, पर दुःख दर्शन उनके सार्वजनिक व्यक्तित्व के प्रमुख लक्षण हैं, तो सहृदय पति, वात्सल्यपूर्ण हृदय रखने वाले पिता भी हैं। लक्ष्मण राम के भक्त आज्ञाकारी बन्धु और सेवक के रूप में चित्रित किए गए हैं। सर्वत्र एक व्यवहारिक तर्कपूर्ण आदर्शवाद की प्रतिष्ठा की गई है।

५—महाकाव्यत्वः—ऊपरी दृष्टि से इस महाकाव्य में भी "साहित्य-दर्पण" में लिखे सभी लक्षण प्राप्त हो जाते हैं। कथानक को विभिन्न सर्गों में विभाजित कर प्रस्तुत किया है। इसकी कथावस्तु संक्षिप्त है। लोकोपवाद को सुन कर वैदेही वनवास, लवकुश जन्म, अश्वमेध पर सीता की वापसी और श्री राम के चरण छूते समय उनका दैवी ज्योति के रूप में परिणित हो जाना—बस इसी संक्षिप्त से कथानक को १८ सर्गों में विभाजित किया गया है। अतः विस्तार में शिथिलता दृष्टिगोचर होती है। प्रासंगिक कथाएँ (शंबूक और लवणासुर-वध) भी छोटी-छोटी हैं और उनसे कथानक की संक्षिप्तता वैसी ही बनी रहती है।

आकार देखने पर हमें रसात्मक मार्मिक स्थल कम ही दिखाई देते हैं। उपदेशात्मकता, आदर्शवादिता और लोक मंगल की भावना ने काव्य-

सौष्ठव को दबा लिया है। वर्णनों में वशिष्ठाश्रम-वर्णन वाल्मीक्याश्रम यात्रा, वृक्षों के वर्णन पुष्प वर्णन और अयोध्या वर्णन साधारणतः अच्छे बन पड़े हैं। पर महाकाव्यत्व की गरिमा उनमें नहीं है। आदि में नमस्कार आशीर्वाद या वस्तु निर्देशक शब्दों का कोई प्रयोग नहीं है।

छन्दों में रोला, चतुष्पद, तिलोकी, ताटंक चौपदे, पादाकुलक, सखी, मत्र समक, दोहा और पद आदि दस प्रकार के छन्दों का प्रयोग है। सर्ग के अन्त में एक दोहे का विधान है। मुख्य छन्द तिलोकी है। अलंकार कम हैं पर उनका सहज स्वाभाविक प्रयोग हुआ है। "प्रियप्रवास" की अपेक्षा भाषा सरल, सरस और बोधगम्य है। प्रसाद गुण इस महाकाव्य की विशेषता है। रूढ़िवादी दृष्टिकोण से इसे 'महाकाव्य" कहा जा सकता है किन्तु इसमें वास्तविक महाकाव्य जैसी गरिमा और विराट जीवन दर्शन नहीं है। *

* "हरिऔध" पर अध्ययन योग्य ग्रन्थ जिनसे प्रस्तुत लेख में सहायता ली गई है:—

१ —श्री गिरिजादत्त शुक्ल गिरीश—"महाकवि हरिऔध"

श्री श्याम जोशी एम० ए०—"हरिऔध और वैदेही वनवास"

श्री विश्वम्भर मानव एम० ए० —"खड़ी बोली के गौरव ग्रन्थ"

डा० रामकुमार वर्मा पी० एच० डी०—"यदि मैं "प्रियप्रवास" लिखता" शीर्षक लेख सरस्वती संवाद अंक ७ वर्ष १ ॥

महाकाव्यकार मैथिलीशरण गुप्त कृत

# साकेत

## "साकेत" का महत्व

ऐतिहासिक दृष्टि से "प्रियप्रवास" खड़ी बोली का प्रथम प्रयोगात्मक महाकाव्य था, किन्तु "हरिऔध" जी की गम्भीर व्यंजक शैली, क्लिष्ट संस्कृत गर्भित भाषा, संस्कृत के अतुकान्त छन्दों के प्रयोगों अभिव्यक्ति की जटिलता, संस्कृत शब्द-चयन का चमत्कार आदि के कारण यह पर्याप्त लोकप्रियता प्राप्त न कर सका और इने-गिने विद्वानों तथा विद्यार्थियों के अध्ययन मात्र की वस्तु बन कर गया। "प्रियप्रवास" युगान्तकारी होते हुए भी एक रूढ़िवादी प्रयोगात्मक महाकाव्य कहा जा सकता है। अपनी आदर्शात्मकता, दार्शनिक बोझिल अभिव्यक्ति और भाषा की जटिलता के कारण यह जन-साधारण के गले का हार न बन सका। इन न्यूनताओं का निवारण बाबू मैथिलीशरण गुप्त के "साकेत" में हुआ।

"साकेत" भाषा-भाव की दृष्टि से सरल- प्रवाहमयी, सहज खड़ी बोली में विरचित प्रथम सरस महाकाव्य है। कवि में अपने पाण्डित्य प्रदर्शन या आचार्यत्व को प्रमाणित करने की वह दुर्दमनीय आकांक्षा नहीं जो "प्रियप्रवास" में यत्र-तत्र दृष्टिगोचर होती है। "साकेत" जन-मानस के हृदय के निकट है। यह आधुनिक जीवन, समाज और मनोवृत्तियों से सम्बद्ध सरल भाषा में विरचित है। यहाँ न संस्कृत तत्सम शब्दों का प्रयोग है, न दीर्घ समासों से उलझी लड़ियाँ हैं सीदे सादे मधुर शब्द चयन में गुप्त जी ने नारी हृदय की कुशल अभिव्यक्ति की है। +)

---

+एक मत देखिये, "खड़ी बोली साहित्य का यह प्रथम महाकाव्य

"साकेत" रचना का मूल उद्देश्य—

गुप्त जी ने "साकेत" रचना में क्या उद्देश्य रक्खा है? इस प्रश्न का उत्तर हमें पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी के "कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता" शीर्षक लेख से मिल सकता है। द्विवेदी जी ने उक्त लेख में लिखा था—

"बाल वियोगिनी देवी उर्मिला, उसका चरित्र गेय एवं आलेख्य होने पर भी, कवि ने उसके साथ अन्याय किया। मुने! इस देवी की इतनी उपेक्षा क्यों? इस सर्वसुख वंचिता के विषय में इतना पक्षपात-कार्पण्य क्यों? हाय वाल्मीकि! जनकपुरी में तुम उर्मिला को सिर्फ एक बार वैवाहिक-वधू-वेश में, दिखाकर चुप हो बैठे। अयोध्या आने पर सुसराल में उसकी सुध यदि आपको न आई तो न सही; पर, क्या लक्ष्मण के वन प्रयाण-समय में भी उसके दुःखाश्रुमोचन करना आपको उचित न जँचा? राम के राज्याभिषेक की जब तैयारियां हो रही थी उस समय नवला उर्मिला कितनी खुशी मना रही थी, सो क्या आपने नहीं देखा? अपने पति के परमाराध्य राम को राज्य सिंहासन पर आसीन देख उर्मिला को कितना आनन्द होता—इसका अनुमान क्या आपने नहीं किया? हाय! वही उर्मिला एक घंटे बाद राम-जानकी के साथ, निज पति को १४ वर्ष के लिए वन जाते देख छिन्नमूल शाखा की तरह राज सदन की एक एकान्त कोठरी में भूमि पर लोटती हुई, क्या आपको दृष्टिगोचर नहीं हुई? फिर भी उसके लिए "वचने दरिद्रता"। उर्मिला वैदेही की छोटी बहिन थी। सो उसे बहिन का वियोग सहना पड़ा और प्राणाधार पति का भी वियोग सहना पड़ा। चलते समय लक्ष्मण को उसे एक बार आँख भर देख भी

---

है, जिसमें हम राम-भक्ति शाखा की वर्तमान प्रगति का दर्शन करते हैं। इसमें खड़ी बोली का वह मँजा हुआ स्वरूप है, जिसमें माधुर्य के साथ-साथ अलंकार शास्त्रों की भी पूरी निपुणता प्राप्त होती है इसमें कवि ने अपनी कला, पाण्डित्य और भावुकता का सुन्दर सम्मेलन प्रस्तुत किया है।" —प्रो० कृष्णानन्दन पंत तथा यज्ञदत्तजी शर्मा

न लेने दिया। जिस दिन राम और लक्ष्मण सीता देवी के साथ चलने लगे.......उस दिन भी आपको उर्मिला की याद न आई ! उसकी क्या दशा थी, वह कहाँ पड़ी थी, सो कुछ भी आपने न सोचा ! इतनी उपेक्षा !

"...उर्मिला ने बड़ा आत्मोत्सर्ग किया। उसने अपनी आत्मा की अपेक्षा भी अधिक प्यारा अपना पति राम जानकी को दे डाला और यह आत्म-सुखोत्सर्ग उसने तब किया, जब उसे ब्याह कर आये हुए कुछ ही समय हुआ था। उसने अपने सांसारिक सुख के सबसे अच्छे अंश से हाथ धो डाला। जो सुख विवाहोत्तर उसे मिलता उसकी बराबरी १४ वर्ष पति वियोग के बाद का सुख कभी नहीं कर सकता। उसी के लिए अन्तर्दर्शी आदि कवि के शब्द-भण्डार में दरिद्रता !"

(द्विवेदी जी के इस लेख का प्रभाव गुप्त जी पर पड़ा और उर्मिला की अन्तर्वेदना प्रकट करने के लिए "साकेत" महाकाव्य की रचना हुई। वाल्मीकि एवं तुलसी ने उर्मिला को जो उपेक्षिता रखा था, उसका महत्त्व, बलिदान, उच्चाशय गुप्त जी ने "साकेत" का प्रधान विषय बनाया। "साकेत" उर्मिला की सिसक, पीड़ा, हर्ष-विषाद का सजीव चित्र है। इसमें उर्मिला के चरित्र की महत्ता चित्रित की गई है।

स्वयं गुप्त जी ने उर्मिला के चरित्र के प्रति अपनी सहानुभूति दिखाते हुए लिखा है—"अपने मन के अनुकूल होते हुए भी कोई-कोई बात कह कर भी मैं नहीं कह सका। जैसे नवमसर्ग में उर्मिला का चित्रकूट सम्बन्धी यह संस्मरण—

"मँझली मां से मिल गई, क्षमा तुम्हें क्या नाथ ?
"पीठ ठोक कर ही प्रिये, मानें माँ के हाथ।"

परन्तु इसी के साथ ऐसा भी प्रसंग आया है कि मुझे स्वयं अपने मन के प्रतिकूल उर्मिला का यह कथन—"मेरे उपवन के हरिण, आज वनचारी"—मन ने चाहा कि इसे यों कर दिया जाय—'मेरे मानस के हंस आज वनचारी"—परन्तु इसे मेरे ब्रह्म ने स्वीकार नहीं किया। क्यों ? मैं स्वयं नहीं जानता ! उर्मिला के विरह वर्णन की विचार धारा में मैंने स्वच्छन्दता से काम लिया है।"

तात्पर्य यह है कि स्वर्य गुप्त जी ने इसे उर्मिला-विरह काव्य के रूप में प्रस्तुत किया है। उन्होंने ने रामायण से जान बूझ कर ये मार्मिक स्थल चुने हैं, जिन में उर्मिला के चरित्र को उठाने उभारने और प्रमुखता देने के अवसर प्राप्त हो सकें। महाकाव्य "साकेत" का प्रारम्भ ही उर्मिला लक्ष्मण प्रेम संवाद से होता है। छठे सर्ग में उर्मिला चिन्तन, नवें में विस्तार से उर्मिला विरह चित्रण, दसवें में उर्मिला का सर्व स्मृति-चित्रण होता है।) सर्वत्र गुप्त जी उपेक्षिता उर्मिला के प्रति अपनी सहानुभूति उडेलते हुए दिखाई देते हैं। उसकी अन्तर्वृत्तियों, मनोभावनाओं, विरह वर्णन और वेदना को मुखरित करने में ये तन्मय हुए हैं। हिन्दी काव्य में प्रथम बार "साकेत" के रूप में करुणा से अभिभूत उर्मिला को प्रधान पात्री के रूप में चित्रित करने का प्रयत्न किया गया है। इस दृष्टि से यह महाकाव्य महत्त्वपूर्ण है।)

प्रबन्ध-कल्पना—

"साकेत" का कथानक रामायण से लिया गया है। मूल रूप से इसमें पुरानी ही घटनाएँ हैं किन्तु गुप्त जी ने इस पुराने कथानक में भी कुछ मौलिक परिवर्त्तन उपस्थित किए हैं। श्री प्रेमनारायण टण्डन के अनुसार यह नवीनता हमें तीन बातों में दिखाई देती है:—

१—कथाओं में कुछ नये प्रसंगों की उद्भावना की है।

२—कथा के उपेक्षित प्रसंगों का सविस्तार वर्णन किया है।

३—पूर्व कवियों द्वारा वर्णित विषयों को मनोवैज्ञानिकता, स्वभाविकता और सामयिकता के आधार पर नए दृष्टिकोण से देखा है।

प्रथम श्रेणी में हमें उन प्रसंगों का चित्रण, उपेक्षित पात्रों का चित्रण मिलता है, जिनके विषय में साहित्य मौन है। उपेक्षित पात्रों में उर्मिला, कैकेयी, मांडवी, श्रुतिकीर्ति, शत्रुघ्न आदि को विकसित करने का नूतन प्रयत्न किया गया है। उर्मिला को प्रथम, नवें, दसवें और बारहवें सर्गों में हास परिहास, विरह-वेदना और नवीन कल्पनाओं को मुखरित किया गया है। कौशल्या और भी कोमल है। लांछिता कैकेयी का चरित्र और

निखारा गया है। वह पुत्र स्नेह के आधिक्य के मनोवैज्ञानिक आधार पर राम-वनवास कराती है।

अनेक प्रसंग नए जोड़े गए हैं जैसे उर्मिला लक्ष्मण प्रेम सम्वाद, उर्मिला विरह वर्णन, भरत माण्डवी संवाद, कैकेयी-मंथरा सम्वाद, शूर्पणखा प्रसंग, खर दूषण वध, हनुमान द्वारा विभिन्न वर्णन, मुनिवर वशिष्ठ की योगदृष्टि से नाना घटनाओं का वर्णन सर्वथा नवीन हैं। उर्मिला को जितना महत्त्व प्राप्त हुआ है, वह नवीन कल्पना है। उर्मिला के व्यक्तित्व निर्माण में कवि ने विशेष प्रयत्न किया है। भरत कैकेयी और सीता को उन्होंने अधिक वाक् पटु, मुखर, और व्यवहार कुशल दिखाया तथा कैकेयी की हठ को मनोवैज्ञानिक भित्त पर खड़ा किया है। दृश्यों के चित्रणों में भी नूतनता और आधुनिक सभ्यता का समावेश पाया जाता है। भरत के चित्रण में भी नवीनता का समावेश है कैकेयी के मन में पुत्र स्नेह, दर्प भावना और क्रूरता का समावेश कर सौत के मनोविज्ञान का समावेश किया गया है। मंथरा का द्वेष भावना उत्पन्न करने के भी तर्क और दृष्टान्त सर्वथा नवीन हैं।

प्रथम सर्ग का प्रारम्भ मंगलाचरण से होता है तथा उसमें दशरथ जी के सौभाग्य और परिवार की समृद्धि का संक्षिप्त चित्र है। फिर साकेत (अयोध्या) नगरी का अत्यन्त सजीव विस्तृत वर्णन है। इसमें उर्मिला-लक्ष्मण-प्रेम सम्वाद अभिषेक की सूचना दे दी गई। यहीं से हमें महाकाव्य में लक्ष्मण-उर्मिला के नायक-नायिका होने की सूचना मिलती है। द्वितीय सर्ग में कैकेयी-मंथरा सम्वाद, कैकेयी की आत्म-व्यंजना, कोप, भरत का उपस्थित न होना, कैकेयी का वरदान मांगना, दशरथ की मार्मिक व्यथा और मनः संघर्ष उपस्थित किया गया है। तृतीय, चतुर्थ और पंचम में राम वन गमन तथा तद्विषयक घटनाएँ, छठे में उर्मिला चिन्तन, सप्तम में भरत का आगमन, अष्टम में चित्रकूट सभा का दृश्य, नवें में उर्मिला विरह वर्णन की नाना भावनाएं, दसवें में उर्मिला का सर्व स्मृति चित्रण, ग्यारहवें में भरत माण्डवी-सम्वाद, अरण्य काण्ड की कुछ कथा; किष्किंधा, सुन्दर काण्ड और लंका काण्ड की कथा हनुमान द्वारा वर्णन कराई है। बारहवें

में युद्ध वर्णन' लक्ष्मण के शक्ति लगना, राम विलाप, संजीवनी के प्रभाव से लक्ष्मण का पुनः होश में आना, पुनः युद्ध रावण वध, राम का अयोध्या लौटना अन्ततः लक्ष्मण-उर्मिला मिलन के इस कवित्त पर समाप्त होता है:—

"स्वच्छतर अम्बर में छन कर आ रहा था
स्वादु-मदु-गन्ध से सुवासित समीर--सोम,
त्यागी प्रेम-योग के व्रती वे कुर्नी जायापती
पान करते थे गल बाँह दिये; आया होम।

सम्पूर्ण कथानक में कवि का प्रयत्न यह रहा है कि रामचरित पृष्ठ भूमि में रहे और उर्मिला-लक्ष्मण प्रमुखता प्राप्त करें। प्रथम सर्ग में उर्मिला और लक्ष्मण का प्रेम प्रसंग है, जिससे अनायास ही हम इन दोनों चरित्रों के प्रति आकृष्ट हो जाते हैं। छठे सर्ग में फिर उर्मिला चिन्तन मिलता है। नवें में उर्मिला विरह वर्णन में कवि ऐसा तन्मय हुआ है कि उसे विस्तार की भी स्मृति नहीं रही है। इस सर्ग में करुणा की साकार मूर्ति उर्मिला हमें रुला देती है, विह्वलता साकार हो उठी है। दसवें में उर्मिला का सर्व स्मृति चित्रण किया गया है; अन्त में विस्तार से दोनों प्रेमियों का मिलना दिखा कर गुप्त जी ने लक्ष्मण और उर्मिला को नायक--नायिका बनाया है।

वास्तव में इस विस्तार से चित्रण के कारण उर्मिला-लक्ष्मण के चरित्रों की ओर हमारी जिज्ञासा बनी रहती है। हम उनके आनन्द में मग्न होते तथा विरह-वेदना और कठिनाइयों के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करते हैं। उर्मिला-विरह-वर्णन बड़ा मर्मस्पर्शी भावपूर्ण बन पड़ा है। उपेक्षिता उर्मिला को प्रमुखता प्राप्त हो गई है। रामचरित की कथा में जो उपेक्षित प्रसंग इन दो चरित्रों के सम्बन्ध में रह गए थे, वे सविस्तार प्रकाश में आ गए हैं और एक बड़ी कमी की पूर्ति हुई है।*

* श्री ओम प्रकाश मित्तल के यह विचार सत्य ही हैं, "लक्ष्मण अभी तक केवल राम के अनुचर थे, तथा राम से भिन्न किसी अन्य पात्र से

किन्तु गुप्त जी ने यह प्रमुखता कथानक का जैसा निर्माण कर प्रस्तुत की है, वह ऐसा नहीं बन पाया कि उर्मिला-लक्ष्मण ही प्रधान नायक-नायिका हो जाते। पुराना रामायण का कथानक अपने आप में कुछ ऐसा गठा हुआ है कि श्री राम ही उसके प्रधान नायक और सीता प्रधान नायिका बन जाती हैं। प्रधान कथा राम-सीता पर आधारित रहती है। जब तक नए रूप में रामायण का कथानक न बनाया जाय, तब तक उर्मिला-लक्ष्मण प्रधानता प्राप्त नहीं कर सकते। गुप्त जी ने कुछ परिवर्तन अवश्य किए हैं किन्तु मूल कथानक को ज्यों का त्यों रहने दिया है। केवल जहाँ जहाँ उर्मिला-लक्ष्मण का प्रसंग आया, उन्हें अनावश्यक विस्तार दे दिया है। पूरे दो सर्ग उर्मिला के विरह वर्णन में लगाये गए हैं। दसवें सर्ग में राम के जीवन की झलक उर्मिला की पूर्व स्मृति के रूप में दिखाई गई है। इन परिवर्तनों से भी मूल कथानक में राम-सीता के चरित्र ही प्रधान रहे हैं और उर्मिला-लक्ष्मण गौण के गौण ही बने रहे हैं।

एक आलोचक ने ठीक ही लिखा है, "लक्ष्मण और उर्मिला इस प्रबन्ध काव्य के नायक-नायिका नहीं हैं। गुप्त जी का प्रयत्न तो यही रहा है कि वे इस युग्म को अपने काव्य के नायक-नायिका बनावें, पर उनके आराध्य राम इसके नायक बन बैठे हैं.......साकेत का कार्य है आर्य सभ्यता की प्रतिष्ठा। साकेत से विदा होते समय वशिष्ठ इसका स्मरण दिलाते हैं चित्रकूट में भी यह उद्देश्य स्पष्ट हो गया है....राम सीता के वार्त्तालाप का भी यही विषय है....गुप्त जी की अनिच्छा होने पर भी राम

---

उनका सम्पर्क न था, पर गुप्त जी का उद्देश्य "साकेत" में उर्मिला को काव्य की उपेक्षिता न रहने देने का था। वह लक्ष्मण के अभिनेय रूप में कुछ परिवर्तन किए बिना सिद्ध न हो सकता था। यही गुप्त जी की कुशलता का परिचायक है कि उससे लक्ष्मण के परम्परागत स्वरूप में कुछ भी व्याघाति नहीं होने पाया है और साथ ही उनके उद्देश्य की भी बड़ी सुन्दरता से सिद्धि हो गई है।"

ही "साकेत" के नायक हैं। सभी सर्ग उनकी गाथाओं को लेकर चलते हैं।"S

"साकेत" की प्रबन्धात्मकता त्रुटिपूर्ण है। कवि ने साकेत में ही सब घटनाओं को केन्द्रित कर चित्रित करने की योजना में समूचा कथा को ऐसा तोड़ा मरोड़ा है कि तारतम्य नष्ट हो गया है। श्री ओमप्रकाश सिंहल के शब्दों में, "उर्मिला के प्रति उपेक्षा, कभी राम को प्राणों से अधिक चाहने वाली कैकेयी के व्यवहार पर गहरी दृष्टि न डाल कर उसकी लाञ्छना एवं हनुमान के लक्ष्मण की शक्ति लगने का समाचार सुन कर भी अयोध्यावासियों का चुप रह जाना—ऐसी बातें हैं जिन पर साधारण पाठक को आश्चर्य होता है""कथा के परम्परागत स्वरूप को उन्होंने जिस प्रकार विकृत कर दिया है, वह कदापि वांछनीय नहीं है। उसमें अस्वभाविकता आ गई है।" X

उदाहरण के लिए पर्वत ले जाते हुए हनुमान का मार्ग में बैठ कर भरत जी को राम-लक्ष्मण की आप बीती सविस्तार सुनाने लगना, बेहोश लक्ष्मण को विस्मृत कर बैठना बड़ा अस्वभाविक सा प्रतीत होता है। उधर अयोध्यावासी क्रोध से उन्मत्त हो उठते हैं पर राम की कोई सहायता नहीं कर पाते। वशिष्ठ योग शक्ति से सम्पूर्ण घटनाएँ क्षिप्रता से चित्रित कर देते हैं और अचानक रावण का वध और विजयी राम का लौटने का समय हो जाता है। जनता राम के आगमन की तैयारी में व्यस्त हो जाती है। ये सभी घटनाएँ बड़ी तेजी से दिखाकर किसी प्रकार रामायण की कहानी को पूरा कर दिया जाता है। किन्तु प्रबन्धात्मकता को बड़ी हानि पहुँचती है। शृंखलाएँ परस्पर जुड़ती नहीं, उनमें कार्य कारण का सम्बन्ध नहीं रहता। स्वभाविकता और कथा-प्रवाह नष्ट हो जाता है। न तो उर्मिला लक्ष्मण की कथा मूल कथानक बन पाता है, न राम-सीता की

---

S श्री विश्वम्भर 'मानव' एम० ए० "खड़ी बोली के गौरव ग्रन्थ" पृष्ठ १७०

X श्री ओमप्रकाश सिंहल "साकेत की प्रबन्ध कल्पना"

पुरानी कहानी ही स्थिर रह पाती है। साकेत में मूल-कथानक कौन है ? गौण कौन ?—यह निर्णय करना कठिन हो जाता है। इस दृष्टि से यह महाकाव्य असम्बद्ध है।

वस्तु वर्णन

महाकाव्य के अन्तर्गत जिन वस्तुओं के वर्णन का विधान है, प्रायः वे सब हमें "साकेत" में उपलब्ध हो जाते हैं। "साकेत" नगरी का सुविस्तृत वर्णन मिलता है। इसके अन्तर्गत कवि ने अयोध्या के घर, विविध शालाएँ, तोरण, छज्जे, गवाक्षों, परावत, शिखी, राजमहलों, आदि का उल्लेख किया है :—

"काम रूपी वारिदों के चित्र-से,
इन्द्र की अमरावती के मित्र-से,
कर रहे नृप-सौध गगन-स्पर्श हैं,
शिल्प कौशल के परम आदर्श हैं,

.... .... .... ....

ठौर-ठौर अनेक अध्वर-यूप हैं,
जो सुसंवत् के निदर्शन-रूप हैं।

कवि की दृष्टि सूक्ष्मता से महलों पर खुदी हुई मूर्तियों, उनके विवरण, ऐतिहासिक वृत्तों का भी निर्देश किया है। सरयू नदी का विस्तृत वर्णन है। सरयू के यत्र-तत्र के वातावरण, देवमंदिरों, फुलवारियों का भी निर्देश है। इस प्रकार से अयोध्या आदर्श नगरी के रूप में चित्रित की गई है। यहाँ के नागरिक स्वस्थ, शिक्षित, शिष्ट और उद्योगी दिखाये गये हैं, जो जो बाहर से भोगी प्रतीत होते हैं किन्तु आन्तरिक दृष्टि से योगी हैं; आधि-व्याधि से मुक्त हैं। घरों के साथ अश्व-गोशालाएँ भी हैं। दो पंक्तियों में यदि हम अयोध्या का वर्णन चाहें तो कवि के साथ कह सकते हैं :—

"है अयोध्या अवनि की अमरावती,
इन्द्र हैं दशरथ विदित वीर व्रती।

हाट है मसान पड़ा या घाट है,
शोक-छाया की विकलता हाट है।

पंचम सर्ग में मूर्छित उर्मिला, दशरथ-मरण और सप्तम सर्ग में भरत के वापस लौटते समय विषादमयी साकेत नगरी का चित्र मर्मस्पर्शी है :—

"क्या यही साकेत है जगदीश!
या किसी उजड़ा कुहासी धाम!
गया कुछ है निज के आनन्द!
शान्ति या उद्ध्वस्त यह सन्द!
है न कल-किलकार, न गानागान,
शब्दहीन यथा पुरी का प्राण।

चित्रकूट में जाने वाली भीड़, यथा वहाँ होने वाली सभाएँ, पुर-जन अयोध्या निवासियों का विनम्र व्यवहार के वर्णन बड़े सुन्दर हैं।

प्रकृति-वर्णन

✓प्रकृति वर्णन के अन्तर्गत गुप्तजी ने वन, प्रभात, संध्या, सरयू, चन्द्रमा, वन जीवन, पंचवटी आदि में प्रकृति का भाँति-भाँति से वर्णन किया गया है। श्रीराम के अभिषेक के दिन के प्रभात का विस्तृत वर्णन है। कुछ अंश देखिए—

"सूर्य का यद्यपि नहीं आना हुआ,
किन्तु समझो, रात का जाना हुआ।
बहुत तारे थे, अँधेरा कब मिटा,
सूर्य का आना सुना जब, तब मिटा।
नींद के भी पैर हैं कँपने लगे,
देख लो, लोचन-कुमुद झँपने लगे।
वेश-भूषा साज ऊषा आ गई,
मुख-कमल पर मुस्कराहट छा गई!
पक्षियों की चहचहाहट हो उठी,
चेतना की अधिक आहट हो उठी।
.... .... .... ....

हिम कणों ने है जिसे शीतल किया,
और सौरभ ने जिसे नव बल दिया,
प्रेम से पागल पवन चलने लगा,
सुमन-रज सर्वाङ्ग में मलने लगा।
प्यार से अंचल पसार हरा-भरा,
तारिकाएँ खींच लाई है धरा॥"

गुप्तजी के प्रकृति वर्णन की ये विशेषताएँ हैं :

/(१) वस्तुओं का विवरण :—(जैसे दशम सर्ग में प्रभात वर्णन, पाँचवें में वन वर्णन।)

/(२) चित्रोपमता :—(जैसे छाया का वर्णन जो चित्रमय, भावपूर्ण और रम्य है।)

✓(३) पात्रों के मनोभावों से अनुरंजित :—इस वर्ग में नवम सर्ग के भिन्न-भिन्न प्राकृतचित्र रखे जा सकते हैं। जहाँ उर्मिला आनन्दित है, उसके पृष्ठभूमि के चित्र ललित हैं। प्रथम सर्ग में अभिषेक के पूर्व की प्रकृति का चित्र आनन्द से परिपूर्ण है। समस्त प्रभात अरुण और सुनहरी आभा से भूषित है। विरह वर्णन में यही प्रकृति म्लान है। "मानव" जी के शब्दों में, "दशरथ के शवदाह से पूर्व प्रकृति को एक विधवा के रूप में दिखाया गया है और चित्रकूट में भरत की कार्य समाप्ति पर उसे हँसते किलकिलाते। युद्ध-यात्रा के अवसर पर शत्रुघ्न सरयू की उज्ज्वल धारा को साँस लेकर निहारते हैं....भावों के लपेट में प्रकृति के न जाने कितने रूप खुलते हैं। उर्मिला के विरह-वर्णन को बहुत कुछ षट्ऋतु वर्णन में बद्ध कर दिया है।"

८(४) विराट् दृश्यों के लघुचित्र :—गुप्तजी ने बड़े-बड़े दृश्यों को तूलिका के दो दो स्पर्शों से स्पष्ट कर दिया है। जहाँ विस्तृत चित्रों में वर्णन का वृहद विस्तार मिलता है, वहाँ लघु चित्रों की दो-दो पंक्तियों में विलक्षण अभिव्यंजक शैली का परिचय दिया है। जैसे—

"हुआ विदीर्ण जहाँ तहाँ श्वेत आवरण जीर्ण।
व्योम शीर्ण-कंचुक धरे विषधर-सा विस्तीर्ण॥

.... .... .... ....

फैल गया आलोक, दूर हो गया अँधेरा,
रवि ने अपना पत्र प्रफुल्लित होता देखा।
चमक उठा हिम सलिल रात भर बहते-बहते।"

(४) अलंकारों के रूप में :—इस प्रकार के अनेक वर्णन "साकेत" में भरे पड़े हैं। अरुण-पट पहिने हुए उर्मिला को प्रकट मूर्तिमती उषा-सी बताया गया है। उर्मिला लक्ष्मण के हाथों से चंचला-सी छूट निकलती है। प्रस्थान को जाते हुए लक्ष्मण-उर्मिला प्रसंग का प्रकृति से समन्वित एक प्रसंग देखिए—

"चूमता था भूमितल को अर्ध विधु सा भाल,
बिछ रहे थे प्रेम के दृग-जाल बन कर बाल।
छत्र-सा ऊपर उठा था प्राणपति का हाथ,
हो रही थी प्रकृति अपने आप पूर्ण सनाथ।"

मानव जीवन की व्याख्या के हेतु गुप्तजी ने नाना अलंकारों का विधान रखा है और सादृश्य, विरोध, अन्वय, व्यतिरेक आदि को प्रकृति से ढूँढ़ा है। प्रकृति के उदाहरणों से रूप ग्रहण करने में अपूर्व क्षमता "साकेत" में मिलती है।

(६) स्थिर और गतिमय प्रकृति के चित्र :—जहाँ स्थिर प्रकृति के नाना चित्र हैं, वहाँ गतिमय सजीवता के भी अनेक चित्र मिलते हैं। "साकेत" में प्रकृति हँसती-खेलती है। प्रत्येक क्रीड़ा और क्रिया की गत्यात्मक आकाँक्षा प्रकट की गई है :—

"अरुण संध्या को आगे ठेल,
देखने को कुछ नूतन खेल।
सजे विधु की बेंदी से भाल,
यामिनी आ पहुँची तत्काल।

.... .... .... ...."

मूँदे अनन्त ने नयन धार वह झाँकी,
शशि विकस गया निश्चिन्त हँसी हँस बाँकी।"

(७) **प्रकृति में आध्यात्मिक अभिव्यक्ति**:—डा० सत्येन्द्र के अनुसार साकेत में प्रकृति के रूप और व्यापारों में आध्यात्मिक छाया है। उर्मिला के विरह की हूक प्रकृति के उपादानों में इतनी रम गई है कि वह मनुष्य में ईश्वर की भाँति ध्वनित होती है। जो प्रकट है, वह प्रकृति की भव्य-व्याख्या है, जो आध्यात्मिक अभिव्यक्ति के समकक्ष हो गई है। प्रकृति में भगवान की प्रतिच्छाया देखिए—

"फूल उठे हैं कमल अधर-से ये बन्धूक सुहाये!"

**भाव व्यंजना**

"साकेत" की श्रेष्ठता का कारण उसकी सजीवता और रसात्मकता है। इसमें घटनाओं की प्रधानता न होकर शृङ्गार, करुण और वीर रसों की प्रधानता है। प्रथम वार इस महाकाव्य में इतने अधिक रसात्मक अंश मिलते हैं। ज्यों-ज्यों पढ़ते है, त्यों-त्यों घटनाएँ जल्दी-जल्दी हमारे सामने से निकलती जाती हैं, पर जहाँ कोई भावात्मक स्थल आता है, वहाँ कवि का हृदय उसके वर्णन में पूर्णतः रमने लगता है। वह विस्तार से उसका सांगोपांग वर्णन करता और अपने रसात्मक दृष्टिकोण का परिचय देता है।

"पुरानी लकीर पीटने के स्थान पर गुप्तजी स्थल-स्थल पर नवीन भावों की जो उचित अभिव्यंजना की है, वह हमें बड़ी भली प्रतीत होती है····इसे हम घटनाओं का केन्द्र स्थल न कह कर भावों का क्रीड़ास्थल कहें तो अनुचित न होगा····पाठक ऐसे स्थलों पर पहुँचना चाहता है जहाँ उसे फिर हृदय को स्पर्श करने वाली सामग्री मिल सके। साकेत में जो गीति तत्त्व (Lyrical note) है, वह उसके प्रबन्धात्मक अंग से कहीं अधिक श्रेष्ठ है। कोई पाठक साकेत को इसके कथावस्तु के विचार से नहीं पढ़ेगा, वरन् इसमें जो भावों एवं उद्गारों का संश्लिष्ट चित्र है, अन्तर्द्वन्द्व एवं

वेदना के जो सच्चे स्वरूप हैं, वे इसे काव्य प्रेमियों एवं रसिकों का प्रिय ग्रन्थ बनाए रहेंगे।"×

४ १—संभोग शृंगार :—सर्व प्रथम हमारा हृदय लक्ष्मण-उर्मिला के प्रेमालाप में निमग्न हो जाता है। यह एक सुखी दाम्पत्य जीवन, प्रेम, तुल्यानुराग का सजीव चित्र है। इसमें व्यक्त भाव व्यंजना और घटना-कल्पना सर्वथा नवीन है। उर्मिला ने एक तोता पाल रखा है जिसे बहुत-सी बातें सिखला दी गई हैं। वह इस तोते की प्रवचन पटुता प्रदर्शित करना चाहती है कि पीछे से लक्ष्मण आ जाते हैं और प्रेमालाप प्रारम्भ होता है :—

"प्रेम से उस प्रेयसी ने तब कहा—
रे सुभाषी, बोल चुप क्यों हो रहा?"
पार्श्व से सौमित्र आ पहुँचे तभी,
और बोले—"लो, बता दूँ मैं अभी।
नाक का मोती अधर की कान्ति से,
बीज दाड़िम का समझ कर भ्रान्ति से,
देख कर सहसा हुआ शुक मौन है,
सोचता है, अन्य शुक यह कौन है?"
यों वचन कहकर सहास्य विनोद से,
मुग्ध हो सौमित्र मन के मोद से,
.... .... .... ....
उर्मिला बोली, "अजी, तुम जग गये?
स्वप्न-निधि से नयन कब से लग गये?"
"मोहिनी ने मन्त्र पढ़ जब से छुआ,
जागरण रुचिकर तुम्हें जब से हुआ।"

प्रसंग लम्बा है, किन्तु सर्वत्र रसमय, सजीव एवं मर्मस्पर्शी है। प्रेम की अभिव्यक्ति में नूतन प्रसंगों, सजीव वार्तालापों, गीति-तत्व का विशेष रूप से

×देखिए श्री ओमप्रकाश मित्तल—साकेत की प्रबन्ध कल्पना।

समावेश किया गया है। संभोग शृङ्गार का यह भव्य उदाहरण है। पति-पत्नी प्रेमरस से ओत-प्रोत हैं। अभिशेष चित्र बहुत मार्मिक है।

संभोग शृङ्गार का दूसरा रसमय प्रसंग अष्टम और तीसरा अंतिम तीन सर्गों में मिलता है। सीताजी का वन जीवन तथा तरंगित हृदय एक लम्बे गीत में वह निकला है। सीता के आनन्द की बड़ी मार्मिक अभिव्यक्ति इन पंक्तियों में हुई है :—

"निज सौध सदन में उटज पिता ने छाया,
मेरी कुटिया में राज-भवन मन भाया।"

यह गीत राम सुन रहे हैं; दोनों में मधुर प्रेमालाप होता है; विनोद और मनोरंजन होता रहता है। एक अंश देखिए :—

"ऐसा न हो कि मैं फिरूँ खोजता तुमको,
है मधुप ढूँढ़ता यथा मनोज्ञ कुसुम को!
वह सीताफल जब फलै तुम्हारा चाहा—
मेरा विनोद तो सफल,–हँसों तुम आहा!"
"तुम हँसो, नाथ, निज इन्द्रजाल के फल पर,
पर ये फल होंगे प्रकट सत्य के बल पर।
.... .... .... ....
हो सचमुच क्या आनन्द, छिपूँ मैं वन में,
तुम मुझे खोजते फिरो गंभीर गहन में!"
"आमोदिनी, तुमको कौन छिपा सकता है?
अन्तर को अन्तर अनायास तकता है।
बैठी हैं, सीता सदा राम के भीतर।
जैसे विद्युद् द्युति घनश्याम के भीतर।"

वन मार्ग से जाते हुए ग्राम निवासी स्त्रियाँ सीताजी से पूछती "शुभे, तुम्हारे कौन उभय ये श्रेष्ठ हैं?" तो सीता जी कैसा सुन्दर नववधू के भावों से भरा हुआ उत्तर देती हैं, "गोरे देवर, श्याम ज्येष्ठ हैं।" राम-सीता के शृङ्गार वर्णन में गुप्तजी ने मर्यादा का स[illegible] [illegible]। [illegible] अत्यन्त शिष्ट, उदात्त एवं प्रेममय हैं। उनके विनो[illegible]

देवत्व की ऊँचाई है। दूसरी ओर उर्मिला-लक्ष्मण के संयोग शृङ्गार वर्णन में कवि ने स्वतन्त्रता से काम लिया है। संयोग के अन्तर्गत आने वाले अनेक भाव विभावों, क्रियाओं, आवेगपूर्ण प्रेम, उल्लसित प्रणय का चित्रण हो गया है। इस मादक प्रेम लीला का विस्तृत वर्णन कदाचित इसलिए हुआ क्योंकि कवि नवम सर्ग में उर्मिला का विरह-वर्णन कर करुणा की धारा प्रवाहित करना चाहता था। पहले सर्ग में जो उर्मिला-लक्ष्मण का प्रेम-दृश्य खींचा गया है, उसमें उर्मिला पूर्ण यौवन को प्राप्त नवयुवती है। उसमें प्रेम का आवेग, मादकता, विनोद और तेजी है। आठवें सर्ग तक आते-आते उर्मिला में प्रौढ़ता एवं गंभीरता की परिपक्वावस्था आ जाती है। आठवें सर्ग का संयोग शृङ्गार वर्णन क्षणिक है, पर है मर्म स्पर्शी। कुछ अंश देखिए—

उर्मिला—"मेरे उपवन के हरिण, आज वन चारी,
मैं बाँध न लूँगी तुम्हें, तजो भय भारी।"
गिर पड़े दौड़ सौमित्र प्रिया-पद-तल में,
वह भीग उठी प्रिय-चरण धरे दृग जल में।

लक्ष्मण—"वन में तनिक तपस्या करके,
बनने दो मुझको निज योग्य,
भाभी की भगिनी, तुम मेरे,
अर्थ नहीं केवल उपभोग्य।"

उर्मिला—"हा स्वामी! कहना था क्या-क्या,
कह न सकी, कर्मों का दोष!
पर जिसमें संतोष तुम्हें हो,
मुझे उसी में है संतोष।"

अंतिम सर्ग में वर्षों की विरहणी उर्मिला का प्राणपति से मिलने का उल्लास देखिए—

"उछल रहा यह हृदय अंक में भरले आली,
निरख तनिक तू आज ढीठ संध्या की लाली।

मान करूँगी आज ? मान के दिन तो बीते,
फिर भी पूरे हुए सभी मेरे मन चीते।"

विरहणी की चिर साधना सफल होती है। कुम्हलाया हुआ मुख पुनः खिल उठता है। यह मिलन वर्णन बड़ा हृदयस्पर्शी है :—

उर्मिला—"नाथ, नाथ, क्या तुम्हें सत्य ही मैंने पाया ?"
लक्ष्मण—"प्रिये ! प्रिये ! हाँ आज-आज ही-वह दिन आया।
मेघनाथ की शक्ति सहन करके यह छाती,
अब भी क्या इन पाद-पल्लवों में न जुड़ाती ?
मिला उसी दिन किन्तु तुम्हें मैं खोया खोया,
जिस दिन आर्या बिना आर्य का मन था रोया।"

.... .... ... ....

उर्मिला—स्वामी, स्वामी, जन्म जन्म के स्वामी मेरे।
किन्तु कहाँ वे अहोरात्र, वे साँझ सवेरे।
खोई अपनी हाय ! कहाँ वह खिलखिल खेला ?
प्रिय, जीवन की कहाँ आज वह चढ़ती वेला ?"

.... .... .... ....

लक्ष्मण—"वह वर्षा की बाढ़, गई, उसको जाने दो,
शुचि-गभीरता प्रिये, शरद की यह आने दो।
धरा-धाम को राम-राज्य की जय गाने दो,
लाता है जो समय प्रेम-पूर्वक, लाने दो।"

(इस प्रौढ़ प्रेम में सागर जैसी गहन गंभीरता है। दोनों का आवेगपूर्ण प्रेम दूर होगया है और शान्त प्रेम का उदय हो गया है। तात्पर्य यह कि गुप्तजी ने प्रगाढ़ परिरंभण से लेकर शान्त गंभीर प्रेम तक का वर्णन किया है। संयोग पक्ष के समस्त अंग-उपागों, छोटी-बड़ी भावनाओं का "साकेत" में चित्रण होगया है। इसकी विशेषता सुरुचि और मर्यादा है।)

२—विप्रलंभ शृंगार :—"साकेत" का सौंदर्य वियोग पक्ष के शृङ्गार का वर्णन है। इसमें गुप्तजी की कला अपनी सर्वोच्च सीमा पर पहुँच गई है। उपेक्षिता उर्मिला की विरह-व्यथा अभिव्यक्त करने के हेतु ही इस

महाकाव्य की सृष्टि हुई थी। वस्तुतः "साकेत" का अधिकतर भाग विरह-वेदना की अभिव्यंजना में लगा है।

इस शृङ्गार वर्णन की विशेषताएँ निम्न प्रकार हैं :—

१– प्राचीन ऊहात्मक पद्धति का अवलम्बन :—गुप्तजी ने उर्मिला का विरह वर्णन पुराने हिन्दी कवियों की परम्परा पर किया है। इसका प्रारम्भ इन पंक्तियों से होता है :—

"मानस-मन्दिर में सती, पति की प्रतिमा थाप,
जलती-सी उस विरह में, बनी आरती आप!"

प्रारम्भिक संभोग का शृङ्गार विस्तृत रूप में इसीलिए अंकित किया गया था कि विरह तुलनात्मक दृष्टि से उग्र हो उठे। विरहिणी उर्मिला का शरीर कृश हो गया है; खान पान का उसे कोई उत्साह नहीं रहा है; सखिएँ भोजन लाती हैं पर वह उर्मिला को अच्छा नहीं लगता; दूध भी नहीं पीती, वस्त्रों के प्रति उसे कोई आकर्षण नहीं है। शरीर को धारण करने के लिए उसे खाना-पीना पड़ता है पर उसकी आकांक्षा है, "अरी, कैसे भी तो पकड़ प्रिय के वे पद मरूँ।" वे समदुःखिनी विरहणियों से भेंट करने की इच्छुक हैं। अतीत की प्रिय स्मृतिएँ उनके मानस-पटल पर आकर पुरानी यादगार हरी कर जाती हैं। कभी वे निज तूलिका से पुराने दृश्यों को चित्रित करने का प्रयत्न करती हैं; प्रियतम के सुख-दुख की चिंता उन्हें क्लान्त करती रहती है। वे नाना प्रकार से उनके गुणों की चर्चा करती हैं। नाना वस्तुओं, पक्षियों आदि को सम्बोधन कर निज विरह निवेदन करती हैं। प्रकृति की नाना ऋतुएं विरहोत्कर्ष करने में सहायक होती हैं। विरह-व्यथा के आधिक्य में कभी-कभी उर्मिला उन्मत्त जैसा व्यवहार करने लगती है; कभी विह्वलता से परिपूर्ण गीतों का उच्चारण करती है, कभी अचेत-सी हो जाती है। तात्पर्य यह कि ऊहात्मक पद्धति के अन्तर्गत होने वाली समस्त विरह भाव-व्यंजना मार्मिकता से अभिव्यंजित हुई है।+

×इस विषय में श्री प्रेमनारायण टंडन का मत इस प्रकार है,

२—विरह वर्णन की सजीवता :—प्राचीन पद्धति का होते हुए भी विरह वर्णन में पूर्ण सजीवता है। जिन मनोभावों की अभिव्यंजना नाना रूपों में हुई है, वे शुष्क न होकर मार्मिक और हृदय स्पर्शी हैं। वे हमारी हृदतन्त्री को स्पर्श कर झंकृत कर देते हैं। भिन्न-भिन्न छन्दों में रखकर हर भाव को नवीन शैली में प्रकट किया गया है। एक स्मृति देखिए—

"आये एक बार प्रिय बोले—"एक बात कहूँ,
विषय परन्तु गोपनीय सुनो कान में।"
मैंने कहा—"कौन यहाँ?" बोले—"प्रिये, चित्र तो हैं,
सुनते हैं वे भी राजनीति के विधान में।"
लाल किये कर्णमूल होंठों से उन्होंने कहा—
"क्या कहूँ मगद्गद हूँ, मैं भी छद-दान में,
कहते नहीं हैं, करते हैं कृती!" सजनी मैं
खीज के भी रीझ उठी उस मुसकान में।

उर्मिला लक्ष्मणजी के साथ प्यार से कटे हुए जीवन की विगत स्मृतियाँ बड़ी मधुरता से प्रस्तुत करती है। वह अपने प्रिय के साथ कैसे रहती कैसे बातें करती, हास-परिहास करती, दिन कैसे कटता था—इस सब प्रसंग की बड़ी सजीव स्मृतिएँ अंकित की गई हैं।

3—मानसिक पक्ष की प्रमुखता :—उर्मिला के विरह में ऐन्द्रिक पक्ष गौण है अर्थात् साधारण स्तर पर रहने वासना-जन्य विकार से वह

---

"विरह वर्णन की नवीनतम लोकप्रिय प्रणाली पर दृष्टि रखते हुए भी गुप्तजी ने प्राचीन उहात्मक पद्धति ही प्रधानतः अपनायी है। विरह जनित शारीरिक कृशता से आरंभ करके पूर्व घटनाओं की स्मृति, प्रियतम के हार्दिक और मानसिक सुख-दुख की चिन्ता, तथा प्रिय-गुण कथन का सचाव चर्चा करते-करते विरहिणी का क्रमशः उन्मादिनी होते जाना और अनेक प्रकार से, कभी सचेत और कभी अचेत-सी रह कर उद्विग्नता और व्यथा की व्यंजना करना "साकेत" में विप्रलंभ शृङ्गार के अन्तर्गत ये ही प्रधान विषय हैं।

युक्त है; इसके विपरीत उसमें मानसिक-पक्ष की प्रधानता है। एक परिपक्व मन में उठने वाली शंकाएँ, विद्रोह, संवेदनाएं, संशय, उन्माद, क्षोभ, प्रतीति, भ्रान्ति आदि का चित्रण इसमें मिलता है। नवम् सर्ग में विचारों की भी गहनता है। विरह प्रसंग के जहाँ समस्त भावों को गीतों में उड़ेल दिया गया है, वहाँ उदात्त विचारों का भी मूर्तिमान स्वरूप उपस्थित किया गया है।

४—प्रकृत रूपों और व्यापारों से समन्वय :—उर्मिला प्रकृति को अपनी विरह वेदना में अनुरंजित पाती है। षट ऋतुएँ उनके हृदय की विह्वलता से अभिभूत हैं। वन के पशु पक्षी कीट पतंग समस्त उर्मिला की वेदना में दुःखी हैं। वह भिन्न-भिन्न वस्तुओं में अपने दुःख की प्रतिच्छाया देखती है। जैसे :—

"चातक, मुझको आज ही हुआ भाव का भान।
हा! वह तेरा रुदन था, मैं समझी थी गान।"

.... .... .... ....

निरख सखी, ये खंजन आये,
फेरे उन मेरे रंजन ने नयन इधर मन भाये।
फैला उनके तन का आतप, मन ने सर सरसाये,
घूमें वे इस ओर वहाँ, ये हंस यहाँ उड़ छाये।
स्वागत स्वागत, शरद, भाग्य से मैंने दर्शन पाये,
नभ ने मोती वारे, लो, ये अश्रु अर्घ्य भर लाये।

.... .... .... ....

कोक, शोक मत कर हे तात,
कोकि, कष्ट में हूँ मैं भी तो, सुन तू मेरी बात।

.... .... .... ....

हंस, हहा! तेरा भी बिगड़ गया क्या विवेक बन बन के!
मोती नहीं, अरे, ये आँसू हैं उर्मिला जन के।

(श्रीमती शचीरानी गुर्टू के शब्दों में, "विपन्न क्षणों में उर्मिला पुष्पों, लताओं, पशु पक्षियों और अन्यान्य प्राकृतिक उपादानों में एकात्मकता का

अनुभव करती है।) प्रकृत रूपों और व्यापारों के समक्ष जब कभी वह अपनी पृथक सत्ता की धारणा से छूट कर अपनी चित्तवृत्तियों को उनके भीतर केन्द्रित कर देती है, तो उसके व्यक्त प्रेम की फुरहारियाँ छूट कर अनन्त एकाकार-सी दीखती हैं''''बाह्य विश्व का संघात विरहिणी के प्राणों को क्षण प्रतिक्षण झकझोरता है और वह न जाने कितने ऊहापोहों, पीड़ाओं और मानसिक द्वन्द्वों में अपनी कचोटती वेदना के साथ चौदह वर्ष पूरे करती है "तिल तिल काट रही थी दृग जलधार।"

५—गीति तत्त्व का बाहुल्य :—इस प्रसंग में कवि की वाणी छोटे-छोटे अनेक गीतों के रूप में वह निकली है। कुल मिलाकर इसमें निम्न गीतों का विधान रखा गया है :—

१—"ओ गौरव-गिरि, उच्च उदार" २—वन्दने, तू भी भली बनी ३—दोनों ओर प्रेम पलता है! ४—आ, जा मेरी निदिया गूँगी! ५—स्नेह जलाता है, यह बत्ती! ६—मन को यों मत जीतो! ७—मेरी ही पृथ्वी का पानी! ८—सखि, निरख नदी की धारा! ९—हम राज्य लिए मरते हैं! १०—शिशिर, न फिर गिरि-वन में! ११—भूल पड़ी तू किरण, कहाँ? १२—लूँ मैं अंचल पसार, पीतपत्र आओ! १३—होली-होली-होली १४—खिल सहस्रदल, सरस, सुवास १५—फूल मुझे मत मारो १६—अरी, गूंजती मधुमक्खी १७—ओकाइल, कह, यह कौन कूक! १८—दृगम्बु, आ, दुकूल में १९—तुम्हारे हँसने में हैं फूल, हमारे रोने में मोती २०—स्वजनि रोता है मेरा गान २१—यही आता है इस मन में २२—ऊर्मि हूँ मैं इस भवार्णव की नई! २३—लाना, लाना सखि तूली २४—हे मेरे प्रेरक भगवान। इन चौबीस गीतों का स्वर लहरी हृदय को स्पर्श करती है। ये गाये जा सकते हैं। मूल प्रबन्धक के अतिरिक्त इन्हें स्वतन्त्र रूप से भी गाकर आनन्द प्राप्त किया जा सकता है। भावों के समयानुकूल सुन्दर-सुन्दर अलंकारों के रूप में गूँथ दिया गया है। इनकी स्वाभाविकता, भावुकता और माधुर्य लय से गाकर अनुभव की जा सकती है। गुप्तजी ने यह ध्यान रखा है कि कहीं अलंकारों के अनुचित भार से दुरूह या क्लिष्ट न हो जायँ। अतः साधारण पाठक भी इनसे काव्यानन्द

प्राप्त कर सकते हैं। (इन गीतों के बाहुल्य से यह पता चलता है कि आधुनिक युग मुक्तक काव्य के अधिक अनुकूल है)। प्रत्येक गीत एक विशेष भाव का गीतिलय से युक्त विकसित चित्र है। भाषा रसानुकूल रहे, इसका ध्यान रखा गया है।

३. करुण रस :—

गौण रूप से "साकेत" में करुण और वीर रसों का समावेश किया गया है। करुण रस का उद्रेक राम वन गमन, दशरथ-मरण और लक्ष्मण शक्ति के स्थानों पर विशेष रूप से देखा जा सकता है। दुःख की छाया कैकेयी के कोप से ही गिरने लगती है। कवि ने कैकेयी की ईर्ष्या और सौतिया डाह का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया है। कैकेयी की दो इच्छाएँ सुनते ही नृप हतज्ञान हो जाते हैं। विदा के क्षण बड़े करुण हैं :—

"सीता और न बोल सकीं,
गद्गद् कंठ न खोल सकीं।
इधर उर्मिला मुग्ध निरी—
कह कर "हाय!" धड़ाम गिरी।"

.. .... .... ....

लक्ष्मण ने दृग मूँद लिये,
सबने दो दो बूँद दिये
"बहन ! बहन!" कह कर भीता,
करने लगीं व्यजन सीता।"

सूनी अयोध्या का वर्णन देखिए—

"उभय ओर थीं खड़ीं नगर-नर-नारियाँ,
बरसाती थीं साश्रु सुमन सुकुमारियाँ।

सत्याग्रह का वर्णन आँसुओं से भीगा हुआ है।—

"जाओ, यदि जा सको रौंद हमको यहाँ!"
यों कह पथ में लेट गये बहु जन वहाँ।

अश्व अड़े-से अड़े उठाये पैर थे,
क्योंकि समझते प्रेम और वे वैर थे।

कैकेयी का विलाप, पश्चाताप एवं आत्मालीन कारुणिक हो गए हैं—

"युग युग तक चलती रहे कठोर कहानी—
'रघुकुल में भी थी एक अभागिन रानी।'
निज जन्म-जन्म में सुने जीव यह मेरा—
धिक्कार ! उसे था महा स्वार्थ ने घेरा।"

**४—वीर रस** :—इसके उदाहरण युद्ध स्थल से दिये जा सकते हैं। अयोध्या निवासियों की युद्ध के लिए तैयारी का एक सजीव चित्र देखिए—

"यों ही शस्त्र असंख्य हो गए, लगी न देरी,
घनन-घनन बज उठी गरज तत्क्षण रण-भेरी।
काँप उठा आकाश, चौंक कर जगती जागी,
छिपी क्षितिज में कहीं, सभय निद्रा उठ भागी।
उठी क्षुब्ध-सी अहा ! अयोध्या की नर सत्ता,
सजग हुआ साकेत पुरी का पत्ता पत्ता।"

गुप्तजी ने युद्ध स्थल का वर्णन विस्तार से किया है। इसमें दो सेनाओं के लड़ने का सांगोपांग सजीव चित्र खींच दिया गया है। विकट शोर करता हुआ प्रलय-पयोधि के समान सेना का झुंड आगे बढ़ता है। जो प्रहरी सचेत खड़े थे, वे बच निकलते हैं किन्तु फिर घमासान युद्ध होने लगता है :—

"दल-बादल भिड़ गये, धरा धँस चली धमक से,
भड़क उठा भय कड़क तड़क से चमक दमक से।
रण-भेरी की गमक, सुभट नट-से फिरते थे,
ताल ताल पर रुण्ड-मुण्ड उठते-गिरते थे !
छिन्न-भिन्न थे वक्ष, कण्ठ, मस्तक, कर, कन्धे,
रण कौशल से उभय पक्ष थे मानों अन्धे !
सनी सनसनी गली गली में लंकापुर की,
[illegible] उठी आतुरता उर की।"

बीभत्स तथा रौद्र के भी अनेक उदाहरण यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं। प्रसंगानुसार इनका भी प्रयोग किया गया है। पापियों के लिए कहा गया है—

"भरलो उनका रुधिर, करो अपनों का तर्पण,
माँस जटायु-समान जनों को कर दो अर्पण!"

(संक्षेप में "साकेत" की लोकप्रियता और सफलता का प्रधान कारण उसका भाव सौंदर्य है। शृङ्गार करुणा एवं वीर रसों की कुशल अभिव्यक्ति मिलती है। कथोपकथनों का प्रयोग होने से इनमें नाटकीय सजीवता पर्याप्त आगई है। भावुकतापूर्ण स्थल बड़ी संख्या में पाये जाते हैं। उर्मिला की मौन व्यथा, विदग्ध विलाप और पति परायणता की प्रतिष्ठा अच्छी तरह हो गई है।

चरित्र-चित्रण :—

गुप्तजी के चरित्र चित्रण की विशेषताएँ इस प्रकार हैं (१) मर्य्यादा भावना और आदर्शवाद की प्रतिष्ठा। अपने उच्चतम चरित्रों में सर्वत्र संयम और मर्य्यादा की भावना का बहुत ध्यान रखा है (२) मनोवैज्ञानिक गहराइयों का ध्यान रखा है। (३) पारिवारिक व्यक्तियों को मानवीय स्तर पर रखा है, अवतार के रूप में नहीं (४) साधारण चरित्रों की उदात्तता। गुप्तजी के साधारण चरित्र भी गुणों में समुन्नत हैं (५) चरित्रों पर सामयिक स्थिति और समस्याओं का भी प्रभाव पड़ा है। अनेक पुराने चरित्र आधुनिकता के रंग में रँगे हुए चित्रित किए गए हैं (६) सभी पात्रों के चरित्रों में तुलसी के "रामचरितमानस" से भिन्न कुछ विशेषता लाने का प्रयत्न रहा है और उपेक्षित चरित्रों को मौलिक रूप से प्रस्तुत किया है।*

(उर्मिला के चित्रण में विशेष ध्यान रखा गया है। वह सुन्दर, कला-निपुण, पतिव्रता, संयमी, आदर्श हिन्दू नारी है)। उसमें भावुकता विशेष मात्रा में विद्यमान है, जिसके कारण वह विरह के क्षणों में पुष्पों, पशु-पक्षी

*श्री प्रेमनारायण टंडन एम० ए०।

और प्राकृतिक उपादानों से तादात्म्य का अनुभव करती है। मानवी के रूप में उसमें साधारण दुर्बलताएँ पाई जाती हैं पर कहीं-कहीं वह त्यागमयी भी दिखाई देती है जैसे "तुम बनी रहो। मैं सनी रहूं॥" इस प्रकार उसका चरित्र उज्ज्वल है। लक्ष्मण को भी पर्य्याप्त स्थान मिला है। राम और सीता इस काव्य के प्रधान नायक-नायिका हैं। (राम मर्य्यादा और लोक संस्कृति के उद्धारक पुरुषोत्तम ईश्वरत्व के प्रतीक रूप में प्रस्तुत किए गए हैं।)

कैकेयी को नये रूप में मनोवैज्ञानिक आधार पर रखा गया है। राम के प्रति कैकेयी की ममता, अपने दुष्कृत्य पर पश्चाताप, और आत्म ग्लानि के भाव गुप्तजी की अन्तर्दृष्टि के परिचायक हैं।

"हम चाहें तो एक-एक शब्द में पात्रों का चरित्र चित्रण कर सकते हैं। राम पुरुषोत्तम हैं, सीता और माण्डवी पतिप्राणा, कौशल्या माता हैं, सुमित्रा क्षत्राणी, दशरथ धर्म-संकट हैं, भरत लक्ष्मण भ्रातृस्नेही, कैकेयी के भावों का उतार-चढ़ाव बड़े मनोवैज्ञानिक ढंग से कवि ने दिखाया है। धीरे-धीरे फिर वह अपने वास्तविक रूप में आती है।"×

शैली :—

शैली कवि के आन्तरिक कलात्मक स्वरूप का प्रतिबिम्ब है। गुप्तजी भावुक हृदय कवि हैं। भाव की प्रतिष्ठा करना उसे अलंकार छन्द की क्लिष्टता से बोझिल न बनाना उनका सहज स्वभाव है। वे संस्कृत गर्भित दुरूह भाषा का प्रयोग न कर भावानुकूल सरस सहज बोधगम्य भाषा का प्रयोग करते हैं।) सरलता के साथ सरसता बनी रहती है और शिथिलता नहीं आने पाती। कहीं-कहीं अनुप्रासयुक्त कोमलकान्त पदावली बड़ी मर्मस्पर्शी है। तुक का उन्होंने सदैव ध्यान रखा है और कहीं कहीं केवल तुकपूर्ति के लिए कुछ शब्द लाए गए हैं पर ऐसे स्थल अधिक नहीं हैं। सुसंस्कृत, प्रौढ़ और साहित्यिक होते हुए भी भाषा भावों की सहचरी रही है। कथा का विकास नवीन परिपाटी की कथोपकथन-शैली पर किया गया

×श्री विश्वम्भर "मानव" एम० ए०।

है। बातचीत का छन्द और तुक में बाँधकर सजीवता से प्रस्तुत करना गुप्तजी की शैली की विशेषता है।

प्रसंगानुकूल अलंकारों का भी अच्छा प्रयोग है। श्लेष यमक और वक्रोक्ति का प्रयोग उत्तम है। डा० सत्येन्द्र का मत है कि पुनरुक्ति प्रकाश का तो विशेष रूप से प्रयोग मिलता है। इनका इतना अधिक और सुष्ठु प्रयोग हिन्दी में कम मिलता है। कहीं किसी क्रिया की गति मत्ता को दिखाने के लिये किया है, तो कहीं भिन्नता और अन्तर की सूचना के लिए द्वित्व किया गया है, कहीं उत्साह प्रबोध, अवयवस्था की अनस्थिरता को व्यक्त करने के लिये किया गया है।

प्रायः एक सर्ग में एक ही सर्ग का प्रयोग है। अन्तिम कवित्त या दोहा सर्ग के अन्त की सूचना देता है। केवल अष्टम एवं नवम सर्गों में नाना छन्दों के कलात्मक प्रयोग पाये जाते है। नवां सर्ग तो चमत्कार प्रदर्शन की एक विशाल चित्रपटी ही बन गया है जिसमें प्रायः सभी प्रकार के छंदों का प्रयोग है। कहीं-कहीं रस और भावों के अनुकूल छन्दों का चयन नहीं हो सका है। ४, १०, सर्गों में छन्द छोटा होने के कारण भाव खिल नहीं पाता। नवें सर्ग में भी छन्द परिवर्तन के कारण भाव का तारतम्य पुनः-पुनः खण्डित होता रहता है। क्षुब्ध मानसिक स्थिति के अनुसार तदनुरूप कहीं-कहीं परिवर्तनशीलता तो उचित है, पर चमत्कार प्रदर्शन उचित नहीं। इन सर्ग में छोटे-छोटे अनेक गीत हैं, जो स्वतन्त्र रूप से भी गाये जा सकते हैं। इनके कारण इसके मुक्तक होने का भ्रम हो जाता है। आठवें सर्ग का "मेरी कुटिया को—राज भवन मन भाया"—गीत भाव सौंदर्य और गीतात्मकता की दृष्टि से बड़ा मर्मस्पर्शी है। गुप्तजी छोटे-छोटे गीतों के रूप में विशेष रूप से सफल होते हैं। भावों के अनुरूप वे लय और सुर वाले गीतों की सृष्टि करते हैं। छन्द चयन की त्रुटि महाकाव्यात्त्व में बाधा स्वरूप है अन्यथा काव्य की दृष्टि से उत्तम है।

महाकाव्यात्व :—

"साकेत" में साहित्यशास्त्र के अनुसार महाकाव्य के प्रायः सभी लक्षण मिल जाते हैं। इसके नायक राम उच्च क्षत्रिय कुल वाले धीरोदत्त

आधुनिक छायावादी काव्य की सर्वोत्तम देन

# कामायनी

(तुलसी के "मानस" के पश्चात् उसी महानता, अर्थ गांभीर्य, भावालोक, रससृष्टि और काव्य-कौशल की गरिमा श्री जयशंकर "प्रसाद" के महाकाव्य "कामायनी" में देखी जा सकती है।) छायावाद के यशस्वी आधुनिक कवि "प्रसाद" की प्रतिभा का चमत्कार अपने सम्पूर्ण सौंदर्य के साथ "कामायनी" में प्रकट हुआ है। (यह मानव मनोविकारों पर आधरित सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य-रूपक है।)

"कामायनी" खड़ी बोली के छायावादी विचारधारा के कवियों में सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है जिसमें उनकी सर्वतोमुखी प्रतिभा पूर्ण रूप से प्रस्फुटित हुई है। "यहाँ गीति और प्रबन्ध-काव्य का अद्भुत सम्मिश्रण है इसका विषय आदि पुरुष मनु और मानव इतिहास की प्राचीनतम घटना जलप्लावन की प्रलय है। इस प्रकार "साकेत" और "प्रियप्रवास" की कथा से भी ऊँचा यह कथानक उठता है। यहाँ मनुष्य के निगूढ़तम भावों की गुत्थियाँ तो नहीं, किन्तु विश्व सृजन का झिलमिल अरुणोदय और आदिम युग का इतिहास अवश्य मिलेगा। दाँते की "डिवाइन कामेडी" और मिल्टन की "पैराडाइज़ लौस्ट" का भी कुछ इसी प्रकार का कथानक गौरव है।" ×

"कामायनी" एक रूपक है। वाह्य अर्थ के अतिरिक्त इसमें छुपा हुआ एक निगूढ़तम अर्थ भी है। इस अन्तर्निहित रूपक की ओर स्वयं प्रसादजी ने इस प्रकार संकेत किया है, "यह आख्यान इतना प्राचीन है कि इतिहास में रूपक का भी अद्भुत मिश्रण हो गया है। इसलिए मनु, श्रद्धा

× देखिए : प्रो० प्रकाशचन्द्र गुप्त का निबंध. "कामायनी"

और इड़ा इत्यादि अपना ऐतिहासिक अस्तित्व रखते हुए, सांकेतिक अर्थ की भी अभिव्यक्ति करें तो मुझे कोई आपत्ति नहीं।" जहाँ इसमें एक ओर इतिहास की प्रमाणिकता का ध्यान रखा गया है, वहाँ दूसरी ओर मानवीय मनोविकारों को रूपक के रूप में प्रस्तुत करने की ओर भी सतत-प्रयत्न दिखाई देता है। "कामायनी" में सर्वाङ्गीण मानव जीवन की काव्य-मय झाँकी मिलती है। कथानक के ढाँचे के साथ-साथ कवि ने रूपक की कल्पना बड़ी कुशलता से संश्लिष्ट की है।

## "कामायनी" की विशेषताएँ

"कामायनी" में भाव भाषा और रूपक तीनों ही दृष्टियों से अनेक सुन्दरताएँ विद्यमान हैं। अनेक आलोचकों ने भिन्न-भिन्न दृष्टियों से इस महाकाव्य पर विस्तार से विचार किया है, कुछ ने स्वतंत्र पुस्तकें और लेख लिखे हैं। इनमें से कुछ आलोचकों के विचार यहाँ उद्धृत किये जाते हैं, जिनसे इस महाकाव्य की विशेषताओं पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है :—

### सर्वश्रेष्ठ रूपक रचना (Allegory)

"कामायनी में मनु श्रद्धा, इड़ा इन तीन ऐतिहासिक पात्रों की कथा के साथ-साथ तीन मनों की रूपक रचना (Allegory) भी प्रस्तुत की गई है। प्रतिभा और कल्पना के योग से यह अभूतपूर्व काव्यात्मक अनुष्ठान किया गया है। कवि ने कहीं-कहीं बहुत ऊँची उड़ान भरी है और जीवन और जगत् के परोक्ष अपरोक्ष रहस्यों का उद्घाटन किया है...काव्य की विस्तृत पटभूमि पर उस विराट् सधी तूलिका से अपने चित्र आँके हैं जिनके रंग न कभी धुँधले हो सकते हैं और न कभी रेखाएँ ही मिट सकती हैं।"×

### आधुनिक काव्य की प्रतिनिधि रचना

"इसमें कवि ने दर्शन-शास्त्रीय-विवेचना, महाकाव्य विषयक सिद्धान्तों, चरित्र चित्रण, बुद्धिवादिता, प्राकृतिक-चित्रण इत्यादि सभी गुणों का बहुत

× श्रीमती शचीरानी गुर्टू एम० ए०—"काव्य दर्शन" भूमिका पृष्ठ २७

कलात्मक ढंग से चित्रण किया है। कामायनी प्रसाद की वर्तमान युग की काव्यधारा की प्रतीक है जिसमें वर्तमान गीतात्मकता और जिसे छायावाद कहा जाता है, उसकी सम्पूर्ण सृष्टि मिलती है। "कामायनी" वर्तमान युग के काव्य का वह दर्पण है जिसमें पाठक हर प्रकार की छाया का प्रतिबिंब देख सकता है। इसमें (१) मानव के क्रमिक विकास का चित्रण है (२) महाकाव्यत्व के सभी गुण विद्यमान हैं (३) प्रकृति तथा मानव दोनों का सुन्दर चित्रण कवि ने किया है (४) दर्शन और बुद्धिवाद के साथ काव्यात्मकता को निभाया गया है (५) कामायनी आज के कविता-काव्य का प्रतीक है।" +

"कामायनी शताब्दियों में कभी-कभी उत्पन्न होने वाले एक प्रतिभाशाली कवि की प्रौढ़तम रचना है और चिंता, आशा, प्रेम, ईर्ष्या, क्षमा, आनन्द आदि सार्वकालिक एवं सर्वदेशिक भावनाओं को समेटने के कारण गन्धवह की भाँति इसका रस नित्य नवीन रहेगा।"*

सर्वाङ्गपूर्ण जीवन की झाँकी

"कामायनी" में उच्चकाव्य के अनेक गुण हैं। इसमें रस, माधुरी, कल्पना, प्रौढ़ता, भावुकता, विचार-प्रौढ़ता सभी मिलेंगे। जीवन की जटिलता, उसका आकर्षण, उसकी पीड़ा सबकी यहाँ झाँकी मिलेगी, साथ ही कवि की कल्पना रंगीन पंख लेकर बहुत ऊँची उठी है। हिन्दी काव्य का इतिहास लिखते समय "कामायनी" को बहुत ऊँचा स्थान देना होगा। अवकाश योगी वर्ग की कला इन परिस्थितियों में इससे अधिक बल और माधुरी नहीं बटोर सकती।"ऽ

---

+ प्रो० कृष्णानन्दन पंत और पं० यज्ञदत्त शर्मा—"प्रबन्ध सागर" पृष्ठ १०३-१०४।

*प्रो० विश्वम्भर "मानव" एम० ए० "खड़ी बोली के गौरव ग्रन्थ" पृष्ठ २३६

ऽ प्रो० प्रकाशचन्द्र गुप्त एम० ए० "नया हिन्दी साहित्य" पृष्ठ १२०

क्रियात्मक बौद्धिक और भावात्मक विकास का सामंजस्य

"वर्तमान हिन्दी साहित्य में विश्व-साहित्य के समक्ष रखने वाला ग्र
"कामायनी" ही है। इसकी रचना मानव आत्मा की उस चिरन्तन पुक
को लेकर हुई है, जो मानव मन में आदिकाल से जड़ीभूत अंधकार
नाश कर आलोकपूर्ण पथ पर चलकर अनन्त आनन्द का अन्वेषण कर
चाहती है। पुराणों में बिखरे हुए इतिहास को लेकर प्रसादजी ने कल्प
का सम्मिश्रण कर "कामायनी" का सृजन किया "मनुष्य के क्रियात
बौद्धिक और भावात्मक विकास में सामंजस्य करने का कवि द्वारा अ
प्रयास किया गया है। कवि भव्यता के विराट् रूप को लेकर उपस्
हुआ है। प्रारम्भिक काव्य में जिस नूतन यज्ञ का संदेश था, उसकी पू
हुति कामायनी में हुई है"'इसमें मंगल का संदेश संसार से ऊपर उठ
नहीं, उसमें ही प्रति पग पर चलते हुए मिलता है। इसमें मानवता अ
विराट् रूप का दर्शन करती हुई, अपने में ही पूर्णता प्राप्त करती
पौराणिक आध्यात्मिक दृष्टिकोण, असुर सुर संघर्ष की क्रियात्मक भावात
व बौद्धिक प्रवृति का मेल छायावादी सुन्दर अभिव्यक्ति, विराट् भाव
का चित्रण, दार्शनिकता के ऊपरी आभास के साथ आनन्दवाद की प्र
मार्मिक-उक्ति व रमणीय और मनोरम अभिव्यंजना आदि की दृि
कामायनी अत्यंत ही श्रेष्ठ व उच्च महाकाव्य है।" ×

नये युग की समाजवादी धारा की प्रतिनिधि रचना

"कामायनी" में विज्ञान प्रसार के फलस्वरूप उत्पन्न हुई अवस्थ
प्रतिकार के रूप में उठी हुई एक आवाज है। बुद्धि के द्वारा मानवत
संयोग से कवि ने जन समाज को सुव्यवस्थित करने की कल्पना की
मानवता को हरण करने वाला वैज्ञानिक युग का वह धनिकवर्ग जो
विज्ञान की शक्ति से दूसरों की खून पसीने की कमाई को हड़प कर स
का रक्त शोषण करता है, उसके प्रति उठी हुई आवाज "कामायनी"
संघर्ष में पाते हैं। इस विज्ञान की कल्पना ने वर्गवाद को जन्म दे

मनुष्य को मनुष्य से अन्तर पर खड़ा कर दिया है। इस भेदभाव की दुनिया को मिटाने के लिये मनु द्वारा उत्पन्न की गई मानवता ही सबसे अधिक उपयोगी सिद्ध होगी। मनुष्य इस मानवता प्रसार के लिए अटल विश्वास और प्रेरणामयी बुद्धि, इन दोनों का ही ऋण वहन करेगा। इसी से उसका उत्थान हो सकेगा। बस यही "कामायनी" में नवयुग की उठी पुकार का उत्तर है।"+

## सांस्कृति पुनःनिर्माण की योजना

"कामायनी अपने पूर्वयुग की कृतियों से अनेक विशेपताएँ रखता है। प्रथम, उसका मनोवैज्ञानिक आधार सुविकसित और प्रौढ़तर है तथा उसमें एक व्यापक अन्तर्निहित दार्शनिक निरुपण अपने लिए स्थान बना सका है। यह निरुपण प्रसादजी की समन्वयशील विचारणा का परिणाम है। द्वितीय, कामायनी में पूर्व युग की नीतिवादी प्रतीक व्यंजना के स्थान पर आनन्दवादी आध्यात्मिक व्यंजना की स्थापना है। तृतीय, इसमें पूर्वयुग की प्रवृत्ति और निवृत्ति की बँधी हुई आदर्शवादी लीक को तोड़कर जीवन प्रयोगों का विस्तार दिखाया गया है। यह विस्तार नवीन युग की यथार्थोन्मुख प्रवृत्तियों का प्रतीक है। चतुर्थ, रहस्यवाद और प्रेमाख्यान काव्य के भीतर प्रसादजी ने नवीन सांस्कृतिक निर्माण का कार्य प्रमुख परिमाण में "कामायनी" द्वारा किया है। पंचम, केवल काव्योत्कर्ष की दृष्टि से भी "कामायनी" का स्थान आधुनिक हिन्दी में अत्यन्त ऊँचा है।"❀

## दार्शनिक चिन्तन में सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य

"कामायनी" की रचना मानवस्था की उस चिरन्तन पुकार को लेकर हुई है, जो आदिकाल से चिर अमर आनन्द और चिर अमर शक्ति प्राप्त करने की आकांक्षा से व्याकुल है। इस घोर अहम्मन्यता पूर्ण दुर्दम आकांक्षा की चरितार्थता के प्रयत्न में मानव को जिन संकट-संकुल-गिरि-पंथों, जिन जटिल जाल जड़ित गहन अरण्य प्रान्तरों तथा घोर

+श्री उपाध्याय वेदमित्र व्रती "कामायनी मीमांसा"

❀आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी एम० ए०

अन्धकारा-छन्न करान्त रात्रियों का सामना करना पड़ता है, उनके संघात की वन्दना कामायनी में बिजली के शब्द से कड़कती हुई बोल उठी है।" ×

मनोविज्ञान एवं काव्य का कलात्मक सम्मिश्रण

"मनोविज्ञान में काव्य और काव्य में मनोविज्ञान यहाँ दोनों एक साथ मिलते हैं। मानस (मन) का ऐसा विश्लेषण एवं काव्यमय निरूपण हिन्दी में शायद शताब्दियों के बाद हुआ है। कामायनी श्रद्धा का महाकाव्य है, जिससे जीवन में चिरशान्ति और आनन्द मिलते हैं, जीवन में सात्विकता आती है; भाव, कर्म और ज्ञान (बुद्धि) कल्याणदायी शुभमार्ग पर होकर सब में सामंजस्य संभव होना है""परम्परागत महाकाव्यों के अनुसार न होने पर भी "कामायनी" एक भावात्मक युग का ही विश्व-महाकाव्य है।"*

जीवन के प्रश्नों की बौद्धिक व्याख्या

"कामायनी जीवन दर्शन का क्रमिक तथा स्वभाविक विकास है। उसकी रचना मानवात्मा की एक शाश्वत पुकार को लेकर हुई है। उसमें जीवन के प्रश्नों को बौद्धिक दृष्टि से सुलझाया गया है। उसमें एक सहज रूपक द्वारा कल्पना तथा कविता को सहायता से जीवन के चिरन्तन सत्य की चिर पुरातन झाँकी दी गई है। कामायनी की कथावस्तु सार्वदेशिक एवं शाश्वत है। वह निस्सीम है। वह प्रत्येक देश, जाति, काल, धर्म सभी से अपर है। इसमें स्वतन्त्र रूप से अनेकों गीत (Lyrics) बिखरे पड़े हैं। काव्य की दृष्टि से, चरित्र-चित्रण की दृष्टि से तथा अन्य सभी दृष्टियों से "कामायनी" एक सफल महाकाव्य है। +

---

× श्री इलाचन्द्र जोशी

* श्री विद्याभूषण अग्रवाल एम० ए० "कविवर प्रसाद"

+ श्री यस० टी० नरसिंहाचारी एम. ए. "कामायनी किस कोटि का महाकाव्य है?" ( सरस्वती संवाद अंक १, वर्ष १ )

## "कामायनी" का कथानक

इस महाकाव्य का कथानक पन्द्रह सर्गों में विभाजित किया गया है। विशेषता यह है कि जहाँ एक ओर मनु और श्रद्धा के सहयोग से उत्पन्न नवीन संस्कृति की कहानी है, वहीं अन्दर ही अन्दर मनुष्य के मनोविकारों पर आधारित एक आध्यात्मिक रूपक भी साथ-साथ चलता रहता है। मनु, श्रद्धा और इड़ा तीन प्रतिनिधि पात्रों से ही इसके कथानक का निर्माण हो जाता है।

इसका प्रारंभ "चिन्तासर्ग" से होता है। मनु हिमगिरि के एक ऊँचे शिखर पर बैठे चिन्ता निमग्न दिखाई देते हैं। इस सर्ग में चिन्ता नामक मनोविकार की काव्यमय मनोवैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत की गई है। कुछ पंक्तियाँ देखिए—

"बुद्धि मनीषा मति आशा, चिन्ता, तेरे हैं कितने नाम।
अरी पाप है तू जा चलजा, नहीं नहीं कुछ तेरा काम॥

मनु प्रलय का सारा भीषण दृश्य देख रहे हैं और उसे अतीत के वैभव से मिला कर चिन्तित हो रहे हैं। अपनी असहाय अवस्था पाकर वे म्लान हो रहे हैं कि धीरे धीरे वह कालरात्रि दूर होती है और मनु प्रकृति के सौंदर्य में अपनी चिन्ता को विस्मृत करने का प्रयत्न करते हैं। वे गंभीर बुद्धिवादी चिन्तन में संलग्न हो जाते हैं और मन में ऊषा का आलोक प्रस्फुटित होना दृष्टिगोचर होता है।

दूसरे आशा सर्ग में वे अपने जीवन को धारण करने का साधन खोजकर अग्निहोत्र करने लगते हैं। कदाचित् कोई अन्य व्यक्ति प्रलय के तूफान से बच गया हो, ऐसा सोचकर वे अग्निहोत्र से बचा हुआ अन्न रख देते हैं। उनकी आशा यहीं निकलती है।

श्रद्धासर्ग में वे श्रद्धा (कामायनी) जैसी परमसुन्दरी के दर्शन करते हैं दूसरी ओर से श्रद्धा भी मनु की ओर आकर्षित होती है। धीरे-धीरे परिचय होता है। मनु को मालूम होता है कि श्रद्धा ललित कलाओं में रुचि रखती है। वह गांधार देश से ललित कलाओं की खोज में आरही

और अन्नकणों को देखकर मनुष्य का अस्तित्व जानकर वहाँ रुक गई है। मनु और श्रद्धा का प्रेम हो जाता है।

वासना सर्ग में मनु और श्रद्धा के प्रेम का चित्रण है जिससे विश्व का सूनापन दूर होता है। मनु के हृदय की शुष्कता दूर होती है। वासना की उत्पत्ति होती है। लज्जा सर्ग में श्रद्धा के मन में उत्पन्न लज्जा नामक मनोभाव का विश्लेषण किया गया है। लज्जा को मानस-पुत्री का रूप दे दिया गया है। स्वयं अपना मनः विश्लेषण करने पर श्रद्धा को ज्ञात होता है कि वह स्वयं पहले ही पुरुष पर अपने आपको न्योछावर कर चुकी है। मनु श्रद्धा का दाम्पत्य सुखद चलता रहता है। मनु कर्म में निरत होते हैं और कर्म मार्ग में प्रवृत्त होते हैं।

कर्म सर्ग में कथानक आगे बढ़ता है। मनु हिंसा कर्म में प्रवृत्त होते हैं। दो हिंसक व्यवसायियों के सम्पर्क में रहकर वे बलि-यज्ञ करना चाहते हैं तो श्रद्धा उन्हें रोकती है। श्रद्धा गर्भवती होती है और मनु उसके लिए एक कुटिया का निर्माण करते हैं पर श्रद्धा के प्रति उनका आकर्षण कम होता जाता है।

ईर्ष्या सर्ग में मनु का कम होता हुआ प्रेम, अपने ही पुत्र के प्रति ईर्ष्या के भाव का मनः विश्लेषण है। श्रद्धा को गर्भावस्था में छोड़कर वे भाग निकलते हैं। इस प्रकार चिंता, आशा, श्रद्धा काम, वासना, लज्जा, कर्म, ईर्ष्या आदि आठ सर्गों में होता हुआ कथानक आगे बढ़ता है। इसे कथानक का प्रथम भाग कह सकते हैं।

इड़ा सर्ग में हिमालय की कन्दरा से निकल कर घूमते-फिरते उजड़े हुए सारस्वत प्रदेश में पहुँचते हैं। वहाँ उनकी भेंट इड़ा नामक रूपवती स्त्री से होती है, जिसका झुकाव भौतिकवाद की ओर है और जो अपने अभीष्ट साधन के लिए विज्ञान सहज साधनों का भी उपयोग करना श्रेष्ठ समझती है। मनु पर उसका मोहक मंत्र चल निकालता है और वे उसके सहायक बन कर सारस्वत प्रदेश को बसाते, प्रजा पर शासन करते और राज्य के नियामक बन जाते हैं। इड़ा (बुद्धि की प्रतीक) मनु को स्वेच्छाचारी होने से रोकती है, किन्तु मनु नहीं मानते। प्रजा संघर्ष और भयंकर

राज्य स्थापित कर देती है। श्रद्धा के कुमार नामक पुत्र उत्पन्न होता है और वह स्वप्न में मनु, उसके प्रेम विवाह एवं सारस्वत की प्रजा के विद्रोह के सम्बन्ध में सब कुछ देख लेती है। स्वप्नसर्ग में श्रद्धा का मनु को ढूँढ़ने का वर्णन है। संघर्ष सर्ग में मनु और प्रजा का संघर्ष दिखाया गया है। मनु की पराजय और मूर्छित होना, इड़ा का चिन्तित होना, श्रद्धा का घटनास्थल पर पहुँच कर उपचार, मनु की चेतना प्राप्त होना और सम्मति प्राप्त कर श्रद्धा के प्रति किये गये अपने अत्याचार के प्रति पश्चात्ताप करना, वैराग्य प्राप्त करना और जीवन से विरक्त होकर निकलना दिखाया गया है। यह निर्वेद सर्ग का विषय है। इस प्रकार इड़ा, स्वप्न, संघर्ष और निर्वेद—इन चारों हिस्सों में होते हुए "कामायनी" का दूसरा भाग समाप्त होता है।

(कथानक के तीसरे भाग में दर्शन, रहस्य और आनन्द नामक तीन सर्ग कहे जा सकते हैं। श्रद्धा इड़ा को अपने पुत्र को सौंप कर पुनः मनु को तलाश करने चल देती है। मनु यहाँ अनन्त में शिव के दर्शन करते हैं। रहस्य-सर्ग में इच्छा, ज्ञान व क्रिया का समन्वय और भेद बतलाया गया है। अन्तिम आनन्द सर्ग में इड़ा और कुमार प्रजा को लेकर मानसतट के निवासी श्रद्धा मनु से मिलने आते हैं और चारों ओर आनन्द की वर्षा के साथ महाकाव्य समाप्त होता है। यही इस महाकाव्य का कथानक है।

### कथानक की विशेषताएँ

"कामायनी" के कथानक में सुगठन नहीं है। तारतम्य टूटता-सा प्रतीत होता है। इसके कुछ अंश ऋग्वेद, छान्दोग्य उपनिषद्, शतपथ ब्राह्मण आदि से लिये गये हैं। अनेक स्थानों पर स्वयं प्रसादजी ने कल्पना से काम लिया है।

"कथानक की सृष्टि मनु को केन्द्र मानकर हुई है मनु न केवल शान्ति और व्यवस्था के विधायक इतिहास-प्रसिद्ध राजर्षि मनु हैं, अपितु मनन-शील मानवता के प्रतीक मनुष्य सामान्य मनु भी हैं। अतः प्रथम सर्ग का चिन्तन और प्रलाप जहाँ मनु की ऐतिहासिकता के कारण अधिक करुण एवं प्रभावोत्पादक हो जाता है, वहाँ यह अधिक स्वाभाविक, सुगम एवं

हृदयग्राही भी हो जाता है। इतिहास के कारण मनु से हमारा रागात्मक सम्बन्ध हो जाता है। जब हम देखते हैं कि मनु कोई और नहीं केवल अन्नरसमय कोष में फँसा हुआ जीव है तो हम उससे जिस तादात्म्य का अनुभव करते हैं, वह यथार्थ होता है।"+

कथानक में उत्सुकता या जटिलता नहीं पाई जाती। साधारण-सी कथावस्तु है। इतिहासिक गवेषणा की दृष्टि से यह महत्वपूर्ण है, किन्तु जन-साधारण के लिये उसमें कोई रुचि नहीं प्रतीत होती।

कथानक में रूपक तत्त्व कहीं कहीं मुखर हो गया है। मानव के मनोविकारों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन (चिंता, रहस्य, कर्म, श्रद्धा, ईर्ष्या, स्वप्न, संघर्ष, निर्वेद) विचारकों के लिये रुचिकर हो सकता है, किन्तु जन-साधारण के लिये बोधगम्य नहीं है। दार्शनिकता, निगूढ़ चिन्तन, गंभीर विचारधारा के कारण कथानक का सौंदर्य नहीं है। रूपक का तारतम्य बनाये रखने के कारण मूल कथानक भी कहीं-कहीं टूटता-सा प्रतीत होता है।

मनोविज्ञान की प्रचुरता के कारण कुछ आलोचकों ने "कामायनी" को मनोविज्ञान की ट्रीटाइज़ (पाठ्य पुस्तक) तक कहा है। प्रसिद्ध आलोचक "मानव" जी ने एक स्थान पर लिखा है—"कामायनी में कथानक न होने के बराबर है पर कवि इसके लिये दोषी नहीं ठहराया जा सकता, क्योंकि मानवों की जिस आदि सृष्टि की गहन गुहा से वह कथा की मणि को निकाल कर लाया है। जीवन की जटिलता वहाँ थी ही नहीं। मनु का चरित ऐसा नहीं है जो "स्वयं ही काव्य" हो और जिसे छूकर किसी का भी कवि बन जाना "सहज संभाव्य" हो सके; अर्थात् महाकाव्य के लिये बनी बनाई जिन महान् घटनाओं की आवश्यकता होती है, उनका एक प्रकार से यहाँ अभाव है। इसमें आदि पुरुष और आदि नारी की कहानी है। अतः विकसित जीवन की उलझनें जैसे रामायण में राज्य-लोलुपता, संस्कृति-संघर्ष आदि उनके सामने नहीं हैं। कहीं-कहीं तो मानसिक वृत्तियाँ भी मूलरूप में आई हैं।"

+डा॰ फतेहसिंह "कामायनी सौंदर्य" पृष्ठ ६८

मेरे विचार में प्रसादजी की विशेषता यह मानी जानी चाहिए कि उन्होंने "नहीं के बराबर" एक पुरानी ऐतिहासिक-पौराणिक घटना को पृष्ठभूमि (Back ground) में लेकर एक कथानक का निर्माण तो कर लिया है। प्रारम्भिक भाग, जिसमें प्रलय से लेकर श्रद्धा-मनु के मिलन और प्रेम की अभिव्यक्ति है, अत्यन्त आकर्षक है। मनु-इड़ा मिलन, मनु का राज्यशासन, संघर्ष, सारस्वत-प्रदेश वासियों की कैलाश-यात्रा आदि गौण घटनाएँ कथावस्तु में नाटकीय तत्त्व प्रदान करती हैं। मनु का चरम लक्ष्य अखण्ड आनन्द प्राप्त कराना बड़ी सुन्दरता से हुआ है। इस महाकाव्य की महत्ता कथानक नहीं, छुपा हुआ रूपक है। कथानक में गुम्फित भौतिक और आध्यात्मिक, लौकिक तथा अलौकिक तत्त्वों का सम्मिश्रण एक नवीन सूझ का परिचायक है।

## "कामायनी" में अभिव्यक्त रूपक

प्रायः सभी आलोचकों ने कामायनी के रूपक की सराहना की है। कुछ ने इसका आधिक्य होने से महाकाव्य को शुष्क एवं जटिल तक कहा है। वास्तव में, इसे न समझने के कारण ही जटिल कह दिया गया। कामायनी जन साधारण के पढ़ने योग्य साधारण महाकाव्य न होकर, चिन्तन प्रधान विद्वानों के गले का हार है। आध्यात्म शास्त्र के विद्वान् इसके जीवन दर्शन और आन्तरिक गाम्भीर्य का रसास्वादन कर सकते हैं। दार्शनिक "प्रसाद" ने बड़ी सावधानी से रूपक का निर्वाह किया है।

मनु मानव मन के प्रतीक हैं। श्रद्धा ईश्वरीय आस्था और हृदय तत्त्व इड़ा बुद्धि-तत्त्व और सारस्वत नगर जल माया आदत्त समष्टि-चेतना के प्रतीक हैं। एक प्रकार से मनु-श्रद्धा और इड़ा की कहानी हमारे मन में होने वाले नाना कार्य व्यापारों, आन्तरिक संघर्षों, कल्पनाओं, और विरोधी वासनाओं की कहानी है। मन के सभी कार्य व्यापारों का सजीव मनोवैज्ञानिक विश्लेषण यहाँ हमें मिल जाता है। प्रथम पंक्तियों में चित्रित उत्तुङ्ग शिखर मनोमय कोश है, जिस पर बैठकर जीव (मनु) आँसू बहाता है।

डा० फतेहसिंह के शब्दों में, "मननशील जीव (मनु) की शक्ति के दो रूप हैं—हृदय-तत्त्व और मूर्द्धा तत्त्व। कामायनी में एक को श्रद्धा और दूसरी को इड़ा कहा गया है। एक हृदय सत्ता का सुन्दर सत्य खोजती है, दूसरी स्वयं त्रिगुण तरंगमयी बुद्धि है। विपरण विरक्त मनु (जीव) का त्राण हृदय-तत्त्व द्वारा ही हो सकता है। अतः श्रद्धा आकर मनु को 'तप नहीं जीवन सत्य' का पाठ पढ़ा कर फिर कर्म में प्रवृत्त करती है, परन्तु कर्म क्षेत्र में आसुरी शक्तियों के संयोग से जीव (मनु) पुनः पतन की ओर जाने लगता है। वह मोहान्ध होकर अपनी श्रद्धा शक्ति का परित्याग करता है और इड़ा (बुद्धि तत्त्व) से नाता जोड़ता है; आसुरी सुखवाद को अपनाने के पश्चात् जीव को बुद्धिवादी जड़वाद ही भाता है परन्तु इसका परिणाम भयंकर ही होता है। जिन आसुरी शक्तियों (किलाताकुली) से प्रभावित होकर जीव (मनु) श्रद्धा का परित्याग तथा जड़वाद को ग्रहण करता है, उन्हीं के नेतृत्व में उसे वज्रपात होता है और वह मुमुर्षु हो जाता है। अब सारे जड़वादी बुद्धिवाद से उसका विश्वास उठ जाता है और अवसन्न तथा निर्विण्ण हुआ वह पुनः श्रद्धा (हृदय तत्त्व) की शरण आता है।"×

वास्तव में "प्रसाद" जी की दृष्टि मानसिक वृत्तियों के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और कलात्मक अभिव्यंजना की ओर रही है। सर्गों का नाम-करण इसी पद्धति पर हुआ है। उन्होंने इस रूपक में चित्रित किया है कि श्रद्धा मनु और इड़ा के संयोग से मानवता का विकास हुआ है। मन के हृदय और बुद्धिपक्ष के विकास से मानवता का सर्वाङ्गीण विकास हुआ है।

## कामायनी में चरित्र चित्रण

१—मनु :—इस महाकाव्य के नायक मनु हैं। शारीरिक दृष्टि से वे हृष्ट पुष्ट गठे हुए, सबल, दृढ़ मांसपेशियों वाले स्वस्थ पुरुष हैं। स्वभाव से वे गंभीर विचार प्रधान पर सिद्धान्त से घोर व्यष्टिवादी व्यक्ति हैं। आदि

× देखिये डा० फतहसिंह "कामायनी सौंदर्य" पृष्ठ ७८

पुरुष मनु विराट सत्ता के प्रति जिज्ञासा लिये अग्निहोम करते हुए तप, संयम, मनन और चिन्तन को प्रधानता देते हैं। प्रसाद के शब्दों में :—

"मनन किया करते थे बैठे, ज्वलित अग्नि के पास वहाँ;
एक सजीव तपस्या जैसे, पतझड़ में कर वास रहा।"

मनु विश्वदेवा के उपासक हैं—

"हे अनन्त रमणीय ! कौन तुम ? यह मैं कैसे कह सकता।
कैसे हो ? क्या हो ? इसका तो, भार विचार न सह सकता।
हे विराट् ! हे विश्वदेव ! तुम, कुछ हो ऐसा होता भान !

कामायनी को कई स्थानों पर प्रजापति कहा गया है। "प्रजापति" शब्द का प्रयोग नियामक राजा के अर्थ में हुआ प्रतीत होता है। वे स्वयं कहते हैं कि सारस्वत प्रदेश में उन्हीं ने शान्ति-व्यवस्था स्थापित की थी—

"यह प्रजा बनाकर कितना तुष्ट हुआ था,
किन्तु कौन कह सकता इन पर रुष्ट हुआ था।
कितने जव से भरकर इनका चक्र चलाया,
अलग-अलग ये एक हुई पर इनकी छाया।
मैं नियमन के लिये बुद्धिबल से प्रयत्न कर,
इनको कर एकत्र चलाता नियम बनाकर।"

मनु "अहंवादी हैं। कठोर अनुशासन में सबको रखना चाहते हैं किन्तु स्वयं उनसे मुक्त रहना चाहते हैं। श्रद्धा से प्रेम कर जब वह गर्भवती होकर कुछ नीरस-सी हो जाती है, उसे त्याग कर चले जाते हैं। उधर इड़ा पर मुग्ध हो जाते हैं। उनके जीवन में आन्तरिक संघर्ष की मात्रा बहुत है। मूल मानसिक वृत्तियों के संघर्ष में वे फँसे रहते हैं। प्रसाद ने मनु के चरित्र में कुछ परिवर्तन किया है। डा० फतेहसिंह के शब्दों में, "प्रसाद के मनु परम्परागत मनु से कुछ भिन्न भी हैं। महाभारत के मनु से जब राजा बनने का प्रस्ताव किया जाता है तो पहले तो वे तैयार ही नहीं होते, क्योंकि वे दुराचार और मिथ्याचार से डरते हैं; कुकर्मियों पर शासन करने का साहस उन्हें तभी होता है जब वे लोग दुराचार का दंड

भोगने, पशुधन तथा सुवर्ण का पचासवां तथा अन्न का दसवां भाग कर रूप में देने की प्रतिज्ञा कर लेते हैं। इसके विपरीत "कामायनी" के मनु वासना के शिकार, दर्प और दम्भ से युक्त अनिचार और अनाचार को अपना अधिकार समझने वाले हैं। देश में उनके द्वारा नियमन, व्यवस्था, समृद्धि तथा शान्ति का विस्तार किया गया है, पर प्रजा उसको दूसरे ही दृष्टिकोण से देखती है। यह थोड़ा सा परिवर्तन, परम्परा में किञ्चित घुमाव रूढ़िगत गाथा में ईषत् हेर-फेर, आधुनिकता की पुकार का समावेश करने, नई समस्याओं को युग का प्रतिनिधि महाकाव्य बनाने के लिये अत्यन्त आवश्यक था।"

वास्तव में मनु के लिये यह कहना उचित ही है कि "मनु के चरित्र में भारी हलचल है। उनकी वाणी में बहुधा "प्रसाद" की आत्मा प्रतिध्वनित हुई है। मनुष्य मात्र के वह प्रतिनिधि हैं...आदि पुरुष के चरित्र में जिस गांभीर्य और शान्ति की जा सकती है, वह यहाँ नहीं है।"

२—श्रद्धा :—ममतामयी नारी के रूप में कोमल हृदया श्रद्धा का निर्माण हुआ है। श्रद्धा का रूप सुन्दर है—

"नील परिधान बीच सुकुमार
खुल रहा मृदुल अधखुला अङ्ग;
खिला हो ज्यों बिजली का फूल
मेघ-वन बीच गुलाबी रंग।
आह! वह मुख! पश्चिम के व्योम—
बीच जब घिरते हों घनश्याम;
अरुण रवि मंडल उनको भेद
दिखाई देता हो छवि धाम।"

कोमलता श्रद्धा का एक गुण है। उसकी ममता तथा आत्मभाव का दायरा पशुओं तक विस्तृत है। श्रद्धा मनु को हृदय से प्रेम करती है और मंगलमय पथ का निर्देश करती है। उधर ईर्ष्या वश होकर मनु सारस्वत प्रदेश की रानी इड़ा के प्रेमपाश में आबद्ध हो जाते हैं। वह हिंसा और

स्वार्थ के मार्ग का विरोध करती है। अन्त में, श्रद्धा अपने पुत्र कुमार को छोड़कर मनु की खोज में निकलती है एक गुहा में उन्हें पाती है। प्रारम्भ से अन्त तक श्रद्धा ही इस काव्य में प्रमुख है। वह मनु की तीन अवस्थाओं—ऋषि, प्रजापति पथ-प्रदर्शक—को संयुक्त करने वाली है। मनु के हृदय के अन्तसंघर्ष को वह शान्त करने वाली है। उसे ललित कलाओं का ज्ञान, और हृदय का सुन्दर सत्य प्राप्त करने की आकांक्षा है। मनु के लिए उसका संदेश है—"तप नहीं, केवल जीवन सत्य" है। वह निराश मनु के जीवन में आशा, उत्साह और नवजीवन का संचार करती है। जब मनु कर्म क्षेत्र से विरक्त होने लगते हैं, तो वह उन्हें पुनः कर्म मार्ग पर आरूढ़ करती है। उसके इन शब्दों में कितना बल है—

"दुःख के डर से तुम अज्ञान,
जटिलताओं का कर अनुमान,
काम से झिझक रहे हो आज,
भविष्यत से बनकर अनजान।"

श्रद्धा का आदर्श क्या है! उसे हम श्रद्धा के निम्न शब्दों में पा सकते हैं:—

"यह लीला जिसकी विकस चली
वह मूल शक्ति थी प्रेम-कला,
उसका सन्देश सुनाने को,
संसृति में आई वह अमला।"

श्रद्धा आदर्श भारतीय नारी है। दया, माया, ममता, मधुरिमा तथा अगाध विश्वास से उसका हृदय परिपूर्ण है; मनु भी अन्त में उसकी महानता और गुणगरिमा से प्रभावित होता है और उसे सर्व मंगला के रूप में देखता है। श्रद्धा प्रेम, त्याग और तितिक्षा की जीती जागती मूर्ति है। तिरस्कृत होकर भी वह निरन्तर उन्नति की ओर चलती है; आन्तरिक संघर्षपूर्ण जीवन से वह मनु को सुख और शान्ति के मार्ग पर ले जाती है; धैर्य उसकी पैत्रिक सम्पत्ति है। उसका हृदय उदार है। पति को छीन लेने वाली इड़ा को भी वह सहानुभूति प्रदान करती है और सद्वृत्तियों को

विकसित करने में प्रयत्नशील रहती है। संक्षेप में, श्रद्धा काम की पुत्री, मनु की पथ-प्रदर्शिका, सौत को कल्याण मार्ग पर लगाने वाली, तप के स्थान पर जीवन की महत्ता स्वीकार करने वाली, हृदय सत्ता का सत्य खोजने वाली ममता-प्रेममयी आदर्श भारतीय नारी है। अपने गांभीर्य और आदर्शवाद से वह मनु को पराजित करती है।

३—इड़ा :—इड़ा सारस्वत देश की रानी, भौतिकवाद की ओर उन्मुख, बुद्धि की प्रतीक, कठोर हृदय पर सुन्दर नारी है। उसका स्वरूप आकर्षक है और वह मनु को प्रेरित करती है। जहाँ श्रद्धा सुख शान्ति प्रदान करने वाली नारी है, इड़ा मस्तिष्क की चिर अतृप्ति है।

इड़ा बुद्धिवादिनी नारी है। बुद्धि की शक्ति से वह अपना इष्ट सिद्ध करना चाहती है। इस कार्य में वह "विज्ञान सहज साधनों" का भी प्रयोग उचित समझती है। वह आत्मनिर्भरता और स्वावलम्बन में विश्वास करती है। उसका आदर्श निम्न पंक्तियों में अभिव्यक्त हुआ है :—

"हाँ तुम ही तो अपने सहाय
जो बुद्धि कहे उसको न मानकर फिर नर किसकी शरण जाय,
तुम जड़ता को चैतन्य करो विज्ञान सहज साधन-उपाय,
यश अखिल लोक में रहे छाय।"

इड़ा के धार्मिक विचार क्या हैं? वह विश्व की सृष्टि करने वाले के प्रति उपेक्षा का भाव रखती है। उसे कठोर मानती है। एक स्थान पर अतीन्द्रिय स्रष्टा के प्रति उसके ये भाव देखिए। इनमें इड़ा का संदेह और उपेक्षा मुखरित हो गए हैं। उस स्रष्टा की रचना क्या हुई इसका उत्तर देखिए—

"तब क्या इस वसुधा के लघु लघु प्राणी को करने को सभीत
उस निष्ठुर की रचना कठोर केवल विनाश की रही जीत।
तब मूर्ख आज तक क्यों समझे हैं सृष्टि उसे जो नाशमयी,
उसका अधिपति! होगा कोई, जिस तक दुख की न पुकार गयी।"

रानी के रूप में इड़ा चतुर व्यवहारिक और कार्य-कुशल है। वह

मनु को अपने वश में कर सारस्वत देश का अधिपति बनाती है और नागरिकों के सुख-समृद्धि का ध्यान करती है। प्रजा भी रानी इड़ा को अगाध स्नेह और श्रद्धा से देखती है। मनु प्रजा के निमित्त नियम बनाते हैं, किन्तु स्वयं ही उनका पालन नहीं कर पाते। दो बार इड़ा उन्हें इस अवज्ञा के लिये सावधान करती है लोकनीति तथा मर्य्यादा का स्मरण कराती है, किन्तु जब वे नहीं मानते तो प्रजा द्वारा संघर्ष कराती है। पर मनु को वह प्रेम करती है। कवि ने स्वयं कहा है—

"मनु की सतत सफलता की वह उदय विजयिनी तारा थी।"

(मनु की पथ प्रदर्शिका, शिक्षिका के रूप में हम उसे अनेक स्थानों पर देखते हैं। वह राज्य की सुव्यवस्था करती है और उसकी बुद्धिमत्ता के कारण देश और प्रजा धन-धान्य पूर्ण है)। उसके द्वारा दी गई लोकधर्म की शिक्षा देखिए—

ताल ताल पर चलो नहीं लय छूटे जिसमें,
तुम न विवादी स्वर छेड़ो इसमें
लोक सुखी हो आश्रय ले यदि उस छाया में,
प्राण सदृश हो रमो राष्ट्र की इस काया में॥

इड़ा के चरित्र के सम्बन्ध में कुछ आलोचकों की सम्मति देखिए। प्रथम मत श्री विश्वम्भर "मानव" का है। इड़ा और श्रद्धा का तुलनात्मक चरित्र चित्रण करते हुए "मानव" जी ने लिखा है :—

इड़ा और श्रद्धा :—"श्रद्धा विश्वास है, इड़ा बुद्धि। श्रद्धा आत्म-समर्पण है, इड़ा अंकुश। मनु ने दोनों को अभाव की अवस्था में प्राप्त किया। जब मनु का मन क्षुधित था, तब श्रद्धा आई; उसने प्रेम दिया। जब मस्तिष्क विक्षुब्ध था, तब इड़ा आई और उसने कर्मपथ सुझाया। दोनों अनन्य सुन्दरी हैं। (एक मनु के अभाव को भरती है- दूसरी बुद्धि के;) एक उसे हृदय की गहराई में उतारती है, दूसरी उसे प्रकृति से संघर्ष करना और तत्वों पर विजय प्राप्त करना सिखाती है। दोनों उसे चिन्ता से मुक्त करती हैं। मनु दोनों को ठीक से न समझ सके। उन्होंने एक के

प्रेम को स्वीकार न किया, दूसरी उसे प्रेम न दे सकी। एक उसे प्रेम की व्यापकता सिखलाती है जिसे वह पहले समझ नहीं पाता, दूसरी नियोजित अधिकार पर आक्षेप करती है, जिसे वह स्वीकार नहीं करता। एक उसे क्षमा कर देती है, दूसरी संकट में डाल देती है। एक उसके विरह में व्याकुल होती है, दूसरी उदासीन रहती है। एक उसे खोकर पाती है, दूसरी उस खोये हुये को पाकर फिर निश्चिन्त होकर खो देती है। दोनों दुःख का समाधान हैं। एक दुःख की जीवन में सार्थकता सिद्ध करती है, दूसरी विज्ञान की सहायता से उसे चूर्ण करने की सम्मति देती है""श्रद्धा आनन्द विधायिनी है, पर इड़ा भी व्यर्थ नहीं है।"

<u>इड़ा का स्त्री रूप</u> :—प्रो० रामलालसिंह एम० ए० ने इड़ा के स्त्री-रूप के सम्बन्ध में बड़ी महत्त्वपूर्ण बातें लिखी हैं; देखिए—

"स्त्री रूप में इड़ा में नीति, मर्यादा, उत्तरदायित्व, कर्त्तव्य, बुद्धि, राग-वृत्ति, समर्पण की भावना, क्षमा शीलता, व्यवस्था शक्ति आदि स्त्रियोचित गुणों से युक्त दिखलाई पड़ता है, परन्तु जहाँ वह बुद्धि के प्रतीक रूप में आई है, वहाँ चंचलता, संघर्ष, विप्लव, विद्रोह उत्पन्न करती हुई दिखलाई पड़ती है। स्त्री रूप में वह मनु से प्रेम करती है, परन्तु उनके समान मर्यादा को त्यागकर नहीं, कर्त्तव्य बुद्धि से रहित होकर नहीं, उत्तरदायित्व की उपेक्षा करके नहीं""स्त्रियों में जो व्यवस्था बुद्धि होती है, वह इड़ा में भी है।

## कामायनी का भाव-सौंदर्य

"कामायनी" की महानता का रहस्य प्रसाद की कुशल भावाभिव्यक्ति है। भिन्न-भिन्न भावों की साँकेतिक तथा बिम्ब-विधायक भावात्मक अभिव्यंजना, चित्रोपमता और तन्मयता इस महाकाव्य की विशेषताएँ हैं। भाव-सौंदर्य की प्रतिष्ठा पर "प्रसाद" को असाधारण अधिकार है। कलात्मक भावाभिव्यक्ति के वे सम्राट् हैं। उसमें कल्पना, भावना और चित्रमयता का सहज संयोग है। गीति-तत्त्व का ऐसा मधुर प्रयोग अन्यत्र दुर्लभ है।

<u>मानवीय भावनाओं की कुशल अभिव्यक्ति "प्रसाद" की विशेषता है।</u>

नारी की अन्तर्व्यथाओं को बड़ी कुशलता से अभिव्यक्ति है। कुछ मा
स्थल देखिए—

"खुली उसी रमणीय दृश्य में
अलस चेतना की आँखें;
हृदय-कुसुम की खिलीं अचानक
मधु से वे भीगीं पाखें।"

.... .... .... ....

"किए मुख नीचा कमल समान
प्रथम कवि का ज्यों सुन्दर छंद।
भुज-लता पड़ी सरिताओं की
शैलों के गले सनाथ हुए

श्रद्धा कहती है—

"यह आज समझ तो पाई हूँ,
मैं दुर्बलता में नारी हूँ;
अवयव की सुन्दर कोमलता
लेकर मैं सबसे हारी हूँ।"

लज्जा की अभिव्यक्ति अत्यन्त मार्मिक है :—

"वैसी ही माया में लिपटी, अधरों पर उँगली धरे हुए।
माधव के सरस कुतूहल का, आँखों में पानी भरे हुए॥
नीरव निशीथ में लतिका सी, तुम कौन आरही हो बढ़ती!
कोमल बाहें फैलाये सी, आलिंगन का जादू पढ़ती॥"

.... .... .... ....

छूने में हिचक, देखने में पलकें आँखों पर झुकती हैं।
कलरव परिहास भरी गूँजें, अधरों तक सहसा रुकती हैं॥

स्वयं लज्जा अपना परिचय बड़ी मनोवैज्ञानिक मार्मिकता से देती है—

"मैं रति की प्रतिकृति लज्जा हूँ, मैं शालीनता सिखाती हूँ।
मतवाली सुन्दरता पग में, नूपुर सी लिपट मनाती हूँ।

.... .... .... ....

चंचल किशोर सुन्दरता की, मैं करती रहती रखवाली,
मैं वह हलकी सी वह मसलन हूँ, जो बनती कानों की लाली।"

"प्रसाद" की नारी की परिभाषा छोटी है पर वह उनके हृदय का सब कुछ चित्रित कर देता है। भाषा की अर्थबोध शक्ति दर्शनीय है:—

"नारी! तुम केवल श्रद्धा हो विश्वास रजत नग पग तल में,
पीयूष श्रोत सी बहा करो, जीवन के सुन्दर समतल में।"(लज्जा)

यौवन के पदार्पण की कुशल मनोवैज्ञानिक अभिव्यक्ति "प्रसाद" ने बड़े मार्मिक रूप में प्रस्तुत की है:—

"मधुमय वसन्त जीवन वन के, वह अंतरिक्ष की लहरों में।
कब आये थे तुम चुपके से, रजनी के पिछले पहरों में॥
क्या तुम्हें देखकर आते यों, मतवाली कोयल बोली थी।
उस नीरवता में अलसाई, कलियों ने आँखें खोली थीं!
जब लीला से तुम सीख रहे, कोरक कोने में लुक रहना;
तब शिथिल सुरभि से धरती में बिछलन न हुई थी सच कहना!"

—काम

चिन्ता के भाव की अभिव्यक्ति नीचे लिखे अवतरण में कितनी सुग्राह्य होकर प्रकट हुई है:—

"हे अभाव की चपल बालिके, री ललाट की खल लेखा!
हरी-भरी-सी दौड़ धूप ओ, जलमाला की चल रेखा!"

ईर्ष्या की अभिव्यंजना देखिये—

"यह जलन नहीं सह सकता मैं, चाहिये मुझे मेरा ममत्व।
इस पंचभूत की रचना में, मैं रमण करूँ बन एक तत्व॥

मनुष्य के गुप्त मन में रहने वाली ईर्ष्या, लज्जा, वासना, काम, यौवन, चिन्ता, संघर्ष आनन्द इत्यादि मनोविकारों का जितना सुन्दर और मनोवैज्ञानिक चित्रण कविवर "प्रसाद" ने किया है, वैसा किसी आधुनिक कवि ने नहीं किया है। इस चित्रण में न केवल मनोवैज्ञानिक सत्यता है, वरन् भाषा की चित्रमयता, सजीवता; लक्षणा और व्यंजना के कलात्मक प्रयोग भी हैं। प्रत्येक भाव जैसे स्वयं बोल उठा है।

संचारः—

"कामायनी" में अनेक रसों के लिए कवि को भाव-जन्य स्थितिएँ प्राप्त हो गई हैं किन्तु इसका मुख्य रस शृङ्गार है। इसके अन्तर्गत संयोग और और विप्रलम्भ दोनों प्रकार के वर्णन मिलते हैं। प्रारम्भ से ही श्रद्धा के सौन्दर्य का वर्णन मिलने लगता है। कामायनी के रूप वर्णन में कवि ने रस लिया हैः—

"घिर रहे थे घुँघराले बाल, अंस अवलम्बित मुख के पास।
नील घन शावक से सुकुमार, सुधा भरने को विधु के पास।"

मनु और श्रद्धा प्रेम में आबद्ध होते हैं, तो प्रकृति भी रसमयी हो उठती है। प्रसाद ने इस चित्रण में बड़े आकर्षक रंग भरे हैं। पृष्ठ-भूमि में चित्रित प्रकृति का कोमल रूप देखिए—

"मधुमय बसन्त जीवन-वन के,
वह अन्तरिक्ष की लहरों में;
कब आये थे तुम चुपके से
रजनी के पिछले पहरों में!
क्या तुम्हें देखकर आते यों,
मतवाली कोयल बोली थी।
उस नीरवता में अलसाई,
कलियों ने आँखें खोली थीं।

रति भाव को उद्दीप्त करने के ऐसे अनेक प्रयोग "कामायनी" में मिलते हैं। मतवाली प्रकृति का एक और उदाहरण "वासना सर्ग" से लीजिए—

"मधु बरसती विधु किरण है काँपती सुकुमार।
पवन में है पुलक मन्थर चल रहा मधु-भार॥
तुम समीप अधीर इतने आज क्यों हैं प्राण।
छक रहा है किस सुरभि से तृप्त होकर घ्राण॥

मनु-श्रद्धा मिलन के निम्न चित्र में अनुभावों की गहनता दर्शनीय है

हृदय के मधुर भाव जैसे लज्जा, पुलक, उत्साह, आकांक्षा आदि मनोभावों का सुन्दर चित्रण देखिए—

"मधुर व्रीड़ा मिश्र चिन्ता साथ ले उल्लास।
हृदय का आनन्द कूजन लगा करने रास।
गिर रहीं पलकें झुकी थी नासिका की नोक।
भ्रू-लता थी कान तक चढ़ती रही बे रोक।"

विप्रलम्भ शृङ्गार के अन्तर्गत मान, करुण और प्रवास का चित्रण उत्कृष्ट हुआ है। रूठी हुई श्रद्धा के आन्तरिक भावों के चित्रण का काव्य लालित्य देखिए—

"मधुर विरक्ति-भरी आकुलता फिरती हृदय-गगन में।
अन्तर्दाह स्नेह का तब भी होता था उस मन में।
वे असहाय नयन थे खुलते-मुँदते भीषणता में।
आज स्नेह का पात्र खड़ा था स्पष्ट कुटिल कटुता में।"

मनु श्रद्धा को त्याग कर चले जाते हैं। श्रद्धा की वेदना असह्य है। प्रवास विप्रलम्भ संक्षिप्त होते हुए भी मार्मिक है। स्वप्न सर्ग में विरह व्यंजना देखिए—

"एक मौन वेदना विजन की, झिल्ली की झनकार नहीं।
जगती की अस्पष्ट उपेक्षा एक कसक साकार रही।
हरित कुंज की छाया भर थी वसुधा आलिंगन करती।
यह छोटी सी विरह नदी थी जिसका है अब पार नहीं।"

विरह चित्रण में प्रसाद अद्वितीय हैं। "आँसू" काव्य अपनी सौन्दर्य और स्निग्धता के लिए प्रसिद्ध है। वैसा ही कोमलता, तन्मयता और ध्वनि की सुकुमारता श्रद्धा के विरह वर्णन में है।

\करुण एवं वीभत्स रसों के अनेक वर्णन "कामायनी" में उपलब्ध हैं प्रारम्भ में हम प्रलय का चित्र देखते हैं, मनु का हृदय चिन्तित है, वे विषाद, शोक, चिन्ता में डूबे हुए हैं। ये स्थान करुणा से स्निग्ध हैं। विनाश को देखकर चिन्तित मनु की कल्पना सहज ही हो सकती है। वीभत्स रस का एक लघु चित्र देखिये—

"धू धू करता नाच रहा था, अनस्तित्व का तांडव नृत्य।
आकर्षण-विहीन विद्युत्कण, बने भारवाही थे भृत्य॥"

शान्त रस के लिए हम मनु के निर्वेद सर्ग में प्रकट किए हुए भावों को ले सकते हैं। इसमें तृप्ति की निःसारता, वैराग्य भावना और क्षण-भंगुरता के तत्त्व मिलते हैं कुछ उदाहरण लीजिए—

सोच रहे थे, जीवन सुख है ? ना, यह विकट पहेली है,
भाग अरे मनु ! इन्द्रजाल से कितनी व्यथा न झेली है ?
यह प्रभात की स्वर्ण किरन सी झिलमिल चंचल सी छाया,
श्रद्धा को दिखाऊँ कैसे यह मुख या कलुषित काया।"

.... .... .... ....

इसी प्रकार अन्य रस भी मिलते हैं जैसे त्रिपुर मिलन और नटेश के ताण्डव नृत्य में अद्भुत रस का समावेश है।× "कामायनी" में वीर रस "कामायनी" में वीर रस के लिए अवसर न था। फिर भी यहाँ श्रद्धा मनु को कर्मरत करती है उत्साह की उक्तियाँ मिलती हैं जैसे—

यह क्या तुम सुनते नहीं, "विधाता का मंगल वरदान।
"शक्तिशाली हो विजयी बनो"; विश्व में गूँज रहा जय-गान॥"

श्रद्धा कुमार मानव के प्रसंग में वात्सल्य रस झलक उठा है। "कहाँ रहा नटखट तू फिरता अब तक मेरा भाग्य बना......," आदि पंक्तियों में सूर के बाल वर्णन कोमल भावनाएँ मिलती हैं। "कामायनी" रस की दृष्टि से उत्तम महाकाव्य है।

कामायनी प्रकृति चित्रण

"कामायनी" प्रकृति चित्रण का बाहुल्य है। प्रसाद को प्रकृति से

---

× त्रिपुर-मिलन वाला दृश्य दार्शनिक या मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भले ही महत्त्वपूर्ण हो परन्तु रस दृष्टि से तो तमाशा सा ज्ञात पड़ता है। शिव के ताण्डव नृत्य में भी अद्भुत रस की गम्भीरता वर्तमान नहीं है अतः उसे हम रस निष्पत्ति की उत्तम कोटि में नहीं रख सकते—प्रो० रामलाल सिंह एम० ए०

अत्यधिक अनुराग है। प्रकृति के चित्र आपने बड़ी कुशलता से उतारे हैं। साधारण पृष्ठ भूमि में प्रकृति के अतिरिक्त वह मानवीय भावनाओं से अनुरंजित भी दिखाई गई है। मनु-श्रद्धा मिलन के अवसर पर प्रकृति का स्वरूप कोमल है; मनु और इड़ा के मतभेद के साथ प्रकृति में भी विप्लव होता है—

"उधर गगन में क्षुब्ध हुईं सब देव शक्तियाँ क्रोध भरी,
रुद्र नयन खुल गया अचानक, व्याकुल काँप रही नगरी।"

जब मनु-श्रद्धा सत्य के अनुसंधान के लिए विचरण करते हैं तो प्रकृति शान्त और गम्भीर हो जाती है—

"ऊर्ध्व देश उस नील-तमस में स्तब्ध हो रही अचल हिमानी।
पथ थक कर है लीन, चतुर्दिक देख रहा वह गिरि अभिमानी॥"

प्रसाद द्वारा चित्रित प्रकृति सजीवता से परिपूर्ण है। उसमें जीवन जागृति का स्पन्दन और आशा का सुनहला रूप भी है। एक प्रभात का वर्णन देखिये—

"उषा सुनहले तीर बरसती,
जय-लक्ष्मी सी उदित हुई।"
"धवल मनोहर चन्द्रबिम्ब से,
अंकित सुन्दर स्वच्छ निशीथ;
जिसमें शीतल पवन गा रहा,
पुलकित हो पावन उद्गीथ।"

प्रसिद्ध आलोचक "मानव" जी की सम्मति में प्रकृति के भयंकर विनाशकारी स्वरूप को चित्रित करना प्रसाद जी की एक विशेषता है। उन्होंने लिखा है, "कामायनी के प्रारम्भ में पंचभूत के भैरव मिश्रण से जो प्रलय की हाहाकारमयी स्थिति उपस्थित हुई है, प्रसाद द्वारा प्रकृति के उस दुर्दमनीय स्वरूप का चित्रण चमत्कृत करने वाला है।" वास्तव में प्रसाद विनाशकारी स्वरूप का भी उतना ही सफल चित्रण करते हैं, जितना रुपहला और सुनहरा रूप। प्रभात, संध्या, रजनी के अनेक सुन्दर सुन्दर चित्र कामायनी में मिलते हैं। उपमानों के रूप में भी प्रकृति का

उपयोग हुआ है। रम्य और करुण, भयंकर और मोहक सभी रूपों की उद्भावना यहाँ मिल जाती है। हिमालय के अनेक विराट् दृश्य प्रसाद ने खींचे हैं। प्रकृति को हम एक पात्र मान सकते हैं क्योंकि उसका एक पृथक् व्यक्तित्व मिलता है। जैसे—

नेत्र निमीलित करती मानों, प्रकृति प्रबुद्ध लगी होने।
जलधि लहरियों की अँगड़ाई, बार-बार जाती सोने॥

### कामायनी में महाकाव्यत्व—

"कामायनी" भावप्रधान महाकाव्य है, घटनाओं की जटिलता यहाँ नहीं मिलती, न कथानक निर्माण में ही कवि ने रुचि दिखाई है। जो व्यक्ति इसमें वस्तु वर्णन खोजेंगे, उन्हें निराश होना पड़ेगा। यह अपनी शैली का अनूठा भावात्मक महाकाव्य है। "प्रसाद" ने मानव अन्तर्वृत्तियों की बड़ी गहरी मनोवैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत की है। भाव-सौंदर्य की दृष्टि से यह अभूतपूर्व है।

गौण रूप से कवि ने छोटे से कथानक में ही आधुनिक युग में पाई जाने वाली अनेक समस्याओं ( जैसे संघर्ष, वैषम्य, शोषण, हिंसा, अन्याय, कष्ट, अवतारणा, साम्यवाद, विद्रोह, अधिकार भावना ) को उभारा है। आधुनिक बुद्धि के आधिक्य से उत्पन्न बुराइयों का युग है। हम अति आलोचक हो उठे हैं, हृदय-पक्ष ( करुणा, सहानुभूति, ममता, प्रेम, आनन्द ) का ह्रास हो रहा है। इस भयंकर बुद्धिवाद के विरुद्ध प्रसादजी ने पुकार उठाई है। अति विस्तार से कवि ने जीवन दर्शन को अभिव्यक्त किया है। यहाँ हमें जीवन का चरम लक्ष्य (आध्यात्मिक आनन्द एवं अक्षय शान्ति) शिवत्व के दर्शन हो जाते हैं।

"कामायनी का साध्य आनन्दवाद तथा उसकी प्राप्ति के साधन समरसता के सिद्धान्त, मानव-जीवन के सबसे महान् साध्य, उच्च आदर्श चरम वास्तविकता एवं उच्चतम पूर्णता को प्रतिष्ठित करते हैं। काव्य की प्रकृति के अनुकूल आनन्दवाद से बढ़कर दूसरा साध्य हो ही क्या सकता था। जीवन का उच्चतम सौंदर्य श्रद्धा के रूप में चित्रित किया गया है। जीवन के निरन्तन सत्य, श्रद्धा, सेवा, प्रेम, त्याग, कर्म, काम, आनन्द, समन्वय आदि

का तात्पर्य एवं महत्व समझाया गया है। मानवता का स्थायी शिवत्व इच्छा, ज्ञान तथा क्रिया के समन्वय में बताया गया है।' X

## कामायनी के महाकाव्यत्व पर आक्षेप

(रूढ़िवादी परम्परा की दृष्टि से "कामायनी" पर अनेक आरोप लगाये गये हैं और यह सिद्ध किया गया है कि उस दृष्टिकोण से यह एक असफल महाकाव्य है। इन आक्षेपों की सूची इस प्रकार है:—)

१—घटनाओं की विविधता और विराटता का अभाव।

२—पात्रों की अपर्याप्त संख्या।

३—चरित्र चित्रण में विस्तार की कमी।

४—प्रकृति वर्णन एवं वस्तु वर्णन में विविधता एवं विपदता का अभाव।

५—नायक का चरित्र बहुत गिरा हुआ दिखाया गया है।

६—प्रारम्भ में मंगलाचरण के पश्चात् खल निन्दा तथा सज्जन प्रशंसा का अभाव।

७—छन्द विधान में परिवर्तन न होना।

आक्षेप १—में कथानक की अपूर्णता का निर्देश है, किन्तु हमें स्मरण रखना चाहिए कि यह महाकाव्य घटना प्रधान या वर्णन प्रधान न होकर भाव प्रधान है "प्रसाद" जी ने इस महाकाव्य को भावात्मक रूप देने का सफल प्रयत्न किया है। रम्य भावनाओं और भावात्मक प्रकृति चित्रणों का इसमें बाहुल्य है।

आक्षेप २—पात्रों की संख्या अवश्य केवल तीन है पर कवि मनुष्य के मस्तिष्क में रहने वाली इतनी वृत्तियों का विश्लेषण करता है और इनमें इतनी विविधता है कि उसमें हमें मानवीय भावनाओं का आनन्द आ जाता है। भिन्न-भिन्न भावों के वर्णनों में विविधता है।

आक्षेप ३—जब चरित्र ही केवल तीन हैं, तो अधिक विस्तृत चरित्र की आशा नहीं की जा सकती थी। फिर भी श्रद्धा के जीवन वृत्त,

---

X प्रो० रामलालसिंह एम० ए०

कार्यों, आदर्शों, गुणों तथा व्यवहारों में हमें पर्याप्त विस्तार मिल जाता है।

आक्षेप ४—प्रकृति वर्णन इसमें पर्याप्त है। (समस्त कथानक की पृष्ठ-भूमि प्रकृति की गोद ही है, जिसमें वन, निर्झर, पर्वत शृङ्खलाओं, झंझा प्रभात का प्रचुर वर्णन है। प्रस्तुत तथा आरोपित दोनों रूपों में प्रकृति का विवेचन किया गया है। शुद्ध प्रकृति वर्णन संक्षिप्त है, पर भावमिश्र प्रकृति के रहस्यवादी वर्णन विस्तृत हैं। कथानक की पीठिका ( Back ground ) में आनन्दित, मधुर, रौद्र और भयंकर सभी प्रकार के प्रकृति रूप हमें उपलब्ध हो जाते हैं। वस्तु वर्णन में भी विविधता है।)

आक्षेप ५—नायक का स्थान मनु ने नहीं श्रद्धा ( कामायनी ) ने ले लिया है। वही इस महाकाव्य की सूत्रधार है। उसका चित्र तथा महानता खूब उभारी गई है।

आक्षेप—६, ७ मंगलाचरण 'खल-निंदा' सज्जन-प्रशंसा या छन्द परिवर्तन ये सब कृत्रिम और बाहरी लक्षण हैं। इनके न होने से "कामायनी" की गरिमा और भावश्रेष्ठता में कोई बाधा उपस्थित नहीं होती। "कामायनी" में उच्च काव्य के सभी गुण प्रचुरता से विद्यमान हैं। "महाकाव्य की आत्मा जीवन की पूर्ण अभिव्यक्ति, मानव हृदय के नाना भावों का वर्णन, जीवन की किसी महान समस्या का समाधान लौकिक तथा अलौकिक जीवन का संयोगात्मक समन्वित, मानव जीवन की गूढ़तम वास्तविकता, एवं परमोच्च चेतना है। कामायनी महाकाव्य की इस अन्तरङ्ग कसौटी पर पूर्ण उतरती है।" *

---

* इस लेख में निम्न पुस्तकों से सहायता ली गई है। विद्यार्थियों को विशेष अध्ययन के लिए इनका अध्ययन करना चाहिए—प्रो० रामलाल-सिंह "कामायनी अनुशीलन," डा० फतेसिंह "कामायनी सौंदर्य ;" प्रो० विश्वम्भर मानव "खड़ी बोली के गौरव ग्रन्थ"।

## युग का प्रतिनिधि विचार प्रधान महाकाव्य

# कुरुक्षेत्र

प्राचीन पौराणिक ढांचे में नवयुग की जागृति ; क्रान्ति एवं नव संदेश से परिपूर्ण श्री रामधारीसिंह "दिनकर" कृत 'कुरुक्षेत्र' महाकाव्य एक विचार प्रधान महाकाव्य है। विचार और चिन्तन की मौलिकता और तर्क बुद्धि की प्रधानता इस महाकाव्य की प्रमुख विशेषताएँ हैं। बुद्धि के अतिचार से मानव कहाँ से कहाँ पहुंच जाता है ? भौतिक उन्नति से क्या हानियाँ होती हैं ? आज के समुन्नत युग में मानवता का कैसा ह्रास होगया है ? युद्ध क्यों कैसे तथा कब उत्पन्न होता है तथा उसके कैसे भयंकर दुष्परिणाम होते हैं ? अहिंसा तथा गांधीवाद से क्या युद्ध रोका जा सकता है ? साम्यवाद की क्यों आवश्यकता है ?—इत्यादि अनेक ज्वलन्त समस्याओं पर इस महाकाव्य में विचार किया गया है। सर्वत्र दिनकर की गूढ़-चिन्तना, विचारों की गहनता और तार्किक जटिलता के दर्शन होते हैं।

## कुरुक्षेत्र रचना का उद्देश्य क्या है ?

दिनकर का कवि कोरी भावना अथवा कल्पना में विचरण करने वाला भावुक मानव ही नहीं है, प्रत्युत वह देश, समाज, तथा अन्तराष्ट्रीय समस्याओं पर चिन्तन करने वाला एक विचारक भी है। कवि दिनकर ने वर्तमान युग की सब प्रमुख समस्याओं को गहराई से परखा है। वास्तव में वे स्वयं एक विचार प्रधान जीव हैं। युग-समस्याओं पर विचार प्रकट किए बिना नहीं रह सकते, पर कोरी चिन्तना कैसे अभिव्यक्त की जाय ? कवि को कोई ऐसा सुदृढ़ आधार अपेक्षित है, जिसमें मिलकर वह अपनी मान्यताओं को प्रकट कर सके। "कुरुक्षेत्र" के कवि ने एक प्रसिद्ध पौराणिक कथानक उठा कर द्वितीय समर से उत्पन्न अपने विचार और मान्यताएं सविस्तार व्यक्त की हैं।

स्वयं कवि ने अपने उद्देश्य को प्रकट करते हुए निर्देश किया है।

"कुरुक्षेत्र की रचना भगवान व्यास के अनुकरण पर नहीं हुई है और न महाभारत को दुहराना ही मेरा उद्देश्य था। मुझे जो कुछ कहना था वह युधिष्ठर और भीष्म का प्रसंग उठाये विना भी कहा जा सकता था, किंतु तब यह रचना, शायद प्रबन्ध के रूप में न उतर कर मुक्तक बनकर रह गई होती।"

उपरोक्त कथन से स्पष्ट है कि उसे एक प्रबन्ध काव्य लिखना अभिप्रेत था। इस प्रबन्धात्मकता को बनाये रखने के लिए उसने एक पौराणिक कथानक चुन लिया और कथानक में ही प्रसंगानुसार यत्र तत्र अपनी मौलिक-विचारधारा का स्पष्टीकरण कर दिया है। दिनकर जी ने आगे लिखा है :—

"तो भी यह सच है कि इसे प्रबन्ध के रूप में लाने की मेरी कोई निश्चित योजना न थी वर्तमान युग के कुछ ज्वलन्त प्रश्न मस्तिष्क में थे। कुरुक्षेत्र की आधार भूमि वे ही रहे हैं।

बात यह हुई कि पहले मुझे अशोक के निर्वेद ने आकर्षित किया और "कलिंग विजय" नामक कविता लिखते-लिखते मुझे ऐसा लगा, मानो, युद्ध की समस्या मनुष्य की सारी समस्याओं की जड़ हो।

युद्ध की समस्याओं पर सविस्तार विचार करने के लिए कवि को कथानक मिल गया। उसने प्राचीन महाभारत से कथासूत्र लेकर कथानक का नव-निर्माण किया। इसका निर्देश कवि ने इस प्रकार स्वयं किया है—

"इसी क्रम में द्वापर की ओर देखते हुए मैंने युधिष्ठिर की ओर देखा जो "विजय" इस छोटे से शब्द को कुरुक्षेत्र में बिछी हुई लाशों से तोल रहे थे किन्तु यहाँ भीष्म के कथन में प्रश्न का दूसरा पक्ष भी विद्यमान था। आत्मा का संग्राम आत्मा से देह का संग्राम देह से जीता जाता है—यह कथा युद्धान्त की है। युद्ध के आरम्भ में स्वयं भगवान ने अर्जुन से जो कुछ कहा था उसका सारांश भी अन्याय के विरोध में तपस्या के प्रदर्शन का निवारण ही था।"

युद्ध एक निन्दित और क्रूर कर्म है, किन्तु इसका दायित्व किस पर

होना चाहिए ? उस पर, जो अनीतियों के जाल बिछाकर प्रतिकार को आमंत्रण देता है ? या उस पर, जो जाल को छिन्न-भिन्न कर देने के लिए आतुर है ? पाण्डवों को निर्वासित करके एक प्रकार की शान्ति की रचना तो दुर्योधन ने भी की थी ; तो क्या युधिष्ठिर महाराज को इस शान्ति को भग नहीं करना चाहिए था ?

बस इसी प्रश्न "युधिष्टर महाराज को इस शान्ति को भंग करना चाहिए था अथवा नहीं ?" को लेकर "कुरुक्षेत्र" चलता है। भीष्म और युधिष्ठिर दानों पात्रों के तर्क पूर्ण कथोपकथन में हमें उक्त प्रश्न का उत्तर प्राप्त हो जाता है। दिनकर जी ने आगे अपने दृष्टिकोण को और भी स्पष्ट कर दिया है।

"भीष्म और युधिष्टिर का आलम्बन लेकर मैंने इस पागल कर देने वाले प्रश्न को, प्रायः उसी प्रकार उपस्थित किया है जैसा कि मैं उसे समझ सका हूँ। इसलिए मैं जरा भी दावा नहीं करता कि "कुरुक्षेत्र" के भीष्म और युधिष्ठिर ठीक-ठीक महाभारत के ही युधिष्ठिर और भीष्म हैं। यद्यपि, मैंने सर्वत्र ही इस बात का ध्यान रखा है कि भीष्म अथवा युधिष्ठिर के मुख से कोई ऐसी बात नहीं निकल जाय जो द्वापर के लिए सर्वथा अस्वाभाविक हो। हाँ, इतनी स्वतन्त्रता जरूर ली गई है कि जहाँ भीष्म किसी ऐसी बात का वर्णन कर रहे हों जो हमारे युग के अनुकूल पड़ती हो, उसका वर्णन नए और विशद रूप से कर दिया जाय। कहीं-कहीं इस अनुमान पर भी काम लिया गया है कि उसी प्रश्न से मिलते-जुलते किसी अन्य प्रश्न पर भीष्म पितामह का उत्तर क्या हो सकता था।"

उपरोक्त उद्धरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि कवि का मुख्य आशय युद्ध की अनिवार्यता तथा तप-अहिंसा इत्यादि की निःसरिता दिखाना था। युद्ध का क्या महत्त्व है ? न्यायोचित अधिकार यदि मांगने से न मिले, तो तेजस्वी पुरुष युद्ध कर के ही उन्हें प्राप्त करते हैं भले ही उन्हें युद्ध में मृत्यु प्राप्त हो। न्याय के लिए युद्ध कर मरना ही वीर धर्म है। ऐसे अवसर पर अहिंसा, क्षमा, तेज बल की व्यर्थ दुहाई देना पाप है। इस प्रकार के

विचार कवि ने यत्र तत्र प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में अपने महाकाव्य में प्रकट किए हैं।

कुरुक्षेत्र का रचना काल—

महाकाव्य समाज एवं देश की भावनाओं एवं विचार-धाराओं के प्रतिनिधि होते हैं। कविवर दिनकर का "कुरुक्षेत्र" उस काल की रचना है जब द्वितीय महासमर चल रहा था। द्वितीय महासमर १९४५ में समाप्त हुआ और कवि उसी काल में निरन्तर उससे प्रभावित होता हुआ समर की प्रतिक्रिया से उत्पन्न विचारों को छन्दोबद्ध करता गया। १९४६ में "कुरुक्षेत्र" प्रकाशित हो गया। अतः राष्ट्रीय एवं अन्तराष्ट्रीय विचार-धाराओं की जो प्रतिक्रिया कवि के मन पर हुई, वह "कुरुक्षेत्र" के छन्दों में चमक पड़ी है। वह यह निर्णय न कर सका कि युद्ध में प्रवृत्ति दोनों पक्षों (मित्र राष्ट्र और धुरी राष्ट्र) किसका पक्ष न्याय पूर्ण था ? कौन अपने स्वार्थों के लिए युद्ध कर रहा था। देश में राष्ट्रीय स्वतन्त्रता संग्राम परि-पक्वता को पहुंच गया था। कांग्रेस, मुस्लिमलीग, समाजवादी दल, हिन्दू-महासभा, राष्ट्रीय सेवा संघ आदि अनेक दल अपनी-अपनी दृष्टि से कार्य कर रहे थे। कुछ उदार विचार रखते थे तो कुछ संकुचित हिंसात्मक भेद भाव को आश्रय दे रहे थे। युग पुरुष गांधी अहिंसा सत्याग्रह प्रेम के न्याय-पूर्ण साधनों से आन्दोलन जारी किए हुए थे। ऐसी विषम राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों का प्रतिबिम्ब हमें दिनकर जी के "कुरुक्षेत्र" में मिलता है।

कवि ने नाना मतों को पौराणिक कथानक के द्वारा तर्क से प्रस्तुत किया है। उन्हें ऐसा प्रतीत होता है मानों भिन्न-भिन्न पार्टिएं अपने-अपने स्वार्थों के लिए युद्ध कर रही थीं। लेखक ने चित्रित किया है अन्याय, स्वार्थ, दमन, शोषण और अत्याचार ये दानवीय तत्त्व हैं, जिनसे युद्ध का प्रारम्भ होता है। जो व्यक्ति अन्याय या शोषण करता है, वही युद्ध की विभीषिका, रक्तपात, और विध्वंस का जिम्मेदार है। इस प्रकार कुरुक्षेत्र युग एवं देश-विदेश की राजनैतिक विचारधाराओं का प्रतिबिम्ब है। दिन-कर जी के संस्कारों पर भारतीय आदर्शवाद और हिंदू संस्कृति का व्यापक

प्रभाव दीखता है। एक आदर्शोन्मुखी चेतना उनके विवेचन में प्रकट हुई है।

**कुरुक्षेत्र महाकाव्य की विशेषताएँ :—**

अपने विचारों की मौलिकता की दृष्टि से 'कुरुक्षेत्र' महाकाव्य आलोचकों का ध्यान आकृष्ट करता रहा है। गत वर्षों में इस महाकाव्य की विशेषताओं पर पर्याप्त विस्तार से लिखा गया है। यहाँ हम कुछ आलोचकों की सम्मितियाँ उद्धृत करते हैं जिससे इस महाकाव्य की विशेषताओं पर प्रकाश पड़ता है :—

**नवयुग की जागृति का संदेशवाहक :—**

"कुरुक्षेत्र युद्ध का प्रतीक है। इसमें विचार के दोनों पक्ष तर्क व वितर्क युधिष्ठिर द्वारा भली भाँति कहे गए हैं। इसमें विनय, उग्रता, क्षमा, व शौर्य आदि का अच्छा सम्मिश्रण हुआ है। कवि बुद्धि के अतिचार को युद्ध का कारण मानता है और आज की समस्याओं को सुलझाने का साधन विज्ञान को न मान कर स्नेह को ही मानता है। इसमें भारतीय आदर्शवाद का भी अभाव है।.......इसमें नवयुग की जागृति का संदेश है और न्याय और समता के लिए उत्पीड़ितों की क्रान्ति की पुकार उग्र शब्दों में की गई है।" —प्रो० हरीराम तिवारी एम० ए०

**स्वत्व प्राप्ति का सशक्त स्वर :—**

"महाभारत के युद्ध को इस साहित्यिक पृष्ठभूमि पर चिरस्मारक बनाकर कवि ने न केवल युग क्रान्ति की भावनाओं को सहेजा है, प्रत्युत धर्म, तप, करुणा, क्षमा आदि को व्यर्थता सिद्ध कर अनिवार्य युद्ध की समस्या पर प्रकाश बिखेर दिया है। इसी में विश्व-शान्ति के प्रश्नों का और उसके पवित्र उद्देश्यों का भविष्य खिल रहा है। आधुनिक युग की ऐसी ही प्रवृत्तियों को लेकर उसके 'कुरुक्षेत्र' में मानव कल्याण का स्रोत खोल दिया है। यदि युग मुक्ति चाहता है तो उसे आध्यात्मिक लड़ाई को भूल जाना होगा। इसलिए राष्ट्रभाषा हिन्दी का कवि दिनकर सशक्त स्वर

लेकर स्वत्व प्राप्ति के लिए 'कुरुक्षेत्र' के माध्यम से एक ललकार सुनाने आया है।" —श्री उत्तमचन्द जैन गोयल

सांस्कृतिक प्रगति का भावात्मक चित्रण :—

"प्रथम महायुद्ध से द्वितीय महायुद्ध की अवधि तक हमारे देश में जो सांस्कृतिक प्रगति हुई है उसका उत्कृष्ट भावात्मक चित्रण इसमें हुआ है। युद्ध और शान्ति, हिंसा और अहिंसा, काव्य और तर्क, अनुभूति और विवेक बाहुबल और आत्मबल-प्रकृति और निवृत्ति, हृदय और मस्तिष्क की जो विवेचना इस काव्य में है, उसमें भारतीय संस्कृति और समाज दोनों का सुन्दर समन्वय है।" —श्री राजेन्द्रसिंह गौड़ एम० ए०

वर्तमान समस्याओं की कुंजी :—

डा० लक्ष्मीनारायण टंडन प्रेमी और श्री रामखेलावन चौधरी ने अपनी पुस्तक 'कवि दिनकर और उनका कुरुक्षेत्र में लिखा है, कुरुक्षेत्र विचार प्रधान प्रबन्ध काव्य है·········वर्तमान समय की उलझी हुई समस्याओं को हल करने का इसमें सफल प्रयास किया गया है। यह काव्य युग-प्रवर्तक है। वर्तमान युग के अनेक ज्वलन्त प्रश्नों पर इस ग्रन्थ में प्रकाश डाला गया है। इस संक्रान्तिकाल में यह ग्रन्थ हमारा मार्ग प्रदर्शन सफलता पूर्वक कर सकता है·········युद्ध की अनिवार्यता तथा उसकी पुष्टि के लिए ही जैसे 'कुरुक्षेत्र' महाकाव्य की रचना हुई हो। क्रान्ति का संदेश सुनाने को ही जैसे यह ग्रन्थ लिखा गया हो। स्वभाविक रीति से उत्पन्न हुई परिस्थितियाँ ही मनुष्य को युद्ध के लिए बाध्य करती है। युद्ध-कला का ज्ञान नवयुवकों के लिए आवश्यक है ····कवि युद्ध को पुण्य और पवित्र कर्तव्य समझता है, धर्म समझता है। मानवोचित अधिकार के लिए लड़ना, मरना-मारना, अपने स्वत्वों को छीनने वाले के हाथ काटना ही धर्म है। कवि ने युद्ध की अनिवार्यता, अहिंसा की सफलता, मनोबल की गौणता, शारीरिक बल की महत्ता, युद्ध तथा प्रतिशोध की भावना की आवश्यकता तथा उचित अधिकार के लिए संघर्ष पर जोर दिया है।*

* डा० लक्ष्मीनारायण टंडन और रामखेलावन चौधरी कृत 'कवि दिनकर' पृष्ठ ३२

युग प्रेरक महाकाव्य :—

'युद्ध एक कुत्सित कार्य है, यह सभी जानते हैं·······किन्तु उसकी उपयोगिता क्यों व कैसे ? जैसे प्रश्नों का उत्तर देने वाला यह अपने ढंग का एक निराला महाकाव्य है·······'कुरुक्षेत्र' जनता को जागृति का निमंत्रण देने वाला, सच्चे प्रेम का आह्वान करने वाला, ज्योति प्रसारक एक विशिष्ट महाकाव्य है, जिसमें कवि का स्वर नहीं, बल्कि राष्ट्र का स्वर गुंजायमान है, जो युग-युग तक अपनी प्रेरणा से जागृति प्रदान करता जायगा। आज की राष्ट्रीयता उसका धर्म है और युद्ध की ही सारी समस्याएँ मनुष्यों की समस्याओं की पृष्ठभूमि है। इस भाँति 'स्वान्तः सुखाय' और 'बहुजन हिताय' की उक्ति को चरितार्थ करते हुए लेखक अपने उद्देश्यों में बहुत कुछ अंशों में सफल हुआ है।' —श्री देवेन्द्र

समष्टि का धर्म स्वरूप :—

'लेखक 'कुरुक्षेत्र' में उचित और अनुचित की भावनाओं से प्रेरित है·······व्यक्ति और समूह के धर्म में भी अन्तर है······समष्टि का धर्म ही उसके कुरुक्षेत्र का विषय है। व्यक्ति जहाँ आया है समष्टि का अंग बनकर ही अपने इन विचारों को व्यक्त करने के लिए महाभारत युद्ध ही लेखक के लिए सर्वश्रेष्ठ साधन हो सकता था; इसी को लेकर केवल दो पात्रों के विचार विमर्श द्वारा विषय को प्रस्तुत किया गया है। पुस्तक विचार प्रधान है, भाव प्रधान नहीं। पद पद पर बौद्धिक प्रयास पाठक के मन को काव्य के सहज गुण आनन्द से परिश्रान्ति के क्षेत्र में ला पटकता है।'

—श्री रामप्रकाश एम० ए० साहित्य रत्न

कुरुक्षेत्र का कथानक :—

'कुरुक्षेत्र' की कथावस्तु सात सर्गों में विभाजित है। इसका कथानक का निर्माण महाभारत के युद्ध के उपरान्त कुरुक्षेत्र की युद्ध भूमि में पड़े हुए मृत घायल और कराहते हुए सैनिकों की दयनीय स्थिति से उत्पन्न ग्लानि शोक और पश्चाताप एवं शंकाओं से हुआ है। युधिष्ठिर अपनी शंकाएँ शर-शय्या पर पड़े हुए भीष्म पितामह से कहते हैं और फिर युद्ध

के औचित्य-अनौचित्य पर विचार विनिमय होता है। यह कथोपकथन ही कथानक का स्थान ग्रहण करता है। मन के नाना संकल्प-विकल्पों से कथावस्तु का निर्माण होता है। युधिष्ठिर और भीष्म का कथोपकथन इसका माध्यम है।

प्रथम सर्ग—इसमें हमें प्रमुख पात्र युधिष्ठिर के दर्शन होते हैं और महाभारत युद्ध के उपरान्त उत्पन्न हुई विषम परिस्थिति से कुछ परिचय प्राप्त हो जाता है। राजनीति की प्रधानता, जनता तथा नेताओं के पारस्परिक सम्बन्धों, युद्ध की भयंकरता से उत्पन्न निर्वेद का ज्ञान हमें हो जाता है। कुटिल राजनैतिक स्वयं तो युद्ध करते नहीं, सैनिकों को व्यर्थ ही कटवाते रहते हैं। अनेक बार स्वार्थ सिद्धि के लिए देश और जनता को युद्ध में धकेल देते हैं। 'महाभारत युद्ध में जिन्होंने अपने पुत्र पतियों को खो दिया, उनको देश पर बलिदान समझा जाता है किन्तु इससे जनता को क्या लाभ? यह तो राजनीतिज्ञों का केवल मिथ्या प्रचार मात्र होता है। विषैले प्रचार से एक ओर ये नेता भोली जनता को वश में रखते हैं, दूसरी ओर अपनी स्वार्थ सिद्धि किया करते हैं। युद्ध से किसे लाभ होता है? जनता को कोई लाभ नहीं पहुँचता, केवल ढोंगी नेताओं को नेतृत्व एवं अपनी विचार धारा को दूसरों पर थोपने मात्र का अवसर प्राप्त हो जाता है। युद्ध एक प्रकार का जनता के प्रति अन्याय है। महाभारत न होता, तो भी कोई हानि न होती। विजयी नेताओं ने असत्य को सत्य का रूप दे दिया है और विषैले प्रचार से रक्तपात, पाप, विद्वेष को ढक दिया है। विजय कितनी महँगी पड़ी है। युधिष्ठिर सोच रहे हैं कि ईर्ष्या, द्वेष, हाहाकार तो जीवितों में ही रहता है। कौरव मर चुके हैं। दुर्योधन नष्ट हो गया है। पर युद्ध से मैं जो सुख शान्ति और संतोष चाहता था, वह मुझे कहाँ मिला? केवल ५ व्यक्तियों के सुख के हेतु असंख्य नर संहार और रक्तपात हुआ है?' इन विचारों के मानसिक भार से दबे हुए युधिष्ठिर शंका निवारण के हेतु भीष्म पितामह के पास गए। उस समय भी विजय की ध्वनियाँ सुन पड़ती थीं।

दूसरा सर्ग—इसमें युद्ध की अनिवार्यता सिद्ध की गई है। भीष्म शर-

शय्या पर पड़े हैं कि युधिष्ठिर उनके पास शंका निवारण के लिए आते हैं भीष्म मृत्यु को इच्छा से दूर कर सकते थे अतः वे शर-शय्या पर लेटे थे। युधिष्ठिर ने व्याकुल होकर कहा, 'हे पितामह! यह महाभारत व्यर्थ हुआ दुर्योधन की तो मृत्यु हो गई। उसका केवल मृत-शरीर पड़ा है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है, जैसे वह मृत शरीर पूछ रहा हो कि बोलो! तुम बच रहे हो। विजय तुम्हारी हुई अथवा मेरी? चारों ओर मृत व्यक्ति रक्त, इत्यादि पड़े हैं। महाभारत युद्ध का इतना भयंकर दुष्परिणाम होगा, यदि यह मालूम होता, तो मैं कदापि युद्ध में प्रवृत्त न होता। इसके विपरीत तप, अहिंसा, और त्याग से दुर्योधन का हृदय परिवर्तन करने का प्रयत्न करता। रक्त से सनी हुई इस समृद्धि से क्या लाभ? भगवान् कृष्ण ने भी मुझे इस अन्याय से न रोका। उनके उपदेशों से अर्जुन युद्ध करने को प्रस्तुत हो गया......मेरा हृदय पश्चाताप और आत्म ग्लानि से अभिशप्त हो रहा है......यह सत्य है कि युद्ध बिल्कुल बाध्य होकर करना पड़ा, किन्तु रक्त से सनी हुई विजय भी किसी योग्य नहीं है! युद्ध से पाप हुआ, अथवा नीति का पालन?......जो पाप आत्मीय जनों का वध करने से हुआ, वह राज्य प्राप्त करने से कैसे मिटेगा? आत्मघात तो मैं कर नहीं सकता, किसी गुफा में बैठ कर आत्म-चिन्तन और पश्चाताप करूँगा।'

यह कह कर युधिष्ठिर भीषण शोक में निमग्न हो गए। भीष्म ने कहा, युधिष्ठिर! मनुष्यों में जब पाप और बुराइयाँ आने लगती हैं, तो पीड़ितों का मन कटुता से परिपूर्ण हो उठता है, घृणा, ईर्ष्या, शोक तथा क्रोध से प्रजा भर जाती है; राजनीतिज्ञ इसे स्वार्थ वश उभारते हैं। महाभारत युद्ध में तुम पाँच के ही कारण नहीं, अन्य कारणों से भी युद्ध हुआ है......युद्ध एक संक्रामक रोग की भाँति फैलने वाला होता है। यह सोचना व्यर्थ है कि युद्ध पाप है या पुण्य......सद् या असद् उद्देश्य ही पुण्य या पाप का रूप देते हैं। यदि हम अन्याय के प्रतिशोध में युद्ध करते हैं तो युद्ध कभी पाप नहीं हो सकता। सफल जीवन के लिए वीरता और साहस परम आवश्यक है। जब तक स्वार्थ का राज्य रहेगा, युद्ध तो होता ही रहेगा। व्यक्ति को धर्म, दया, तप क्षमा आदि शोभा देते हैं, किन्तु

समाज और समुदाय के सम्मुख हमें तप त्याग को भूलना पड़ता है। महाभारत अन्याय और अविचारों का अन्त करने के लिए हुआ है अतः वह उचित ही था। आत्मिक गुण उत्तम हैं पर जब जंगली पशुओं से घिर जाता है तो उसे शारीरिक शक्ति का सहारा लेना ही पड़ता है। सामूहिक रूप से दुष्प्रवृत्तियों को दूर करने के लिए शस्त्र उठाना उचित है।'

तीसरा सर्ग—इसमें शान्ति स्थापना के लिए युद्ध की आवश्यकता सिद्ध की गई है। 'हे युधिष्ठिर! समर तो निंदा के योग्य है, किन्तु जहाँ समाज के अगुवा ही अनीति को अपनाये हुए हों, नीतियुक्त प्रस्ताव ठुकराये जाँय, सच कहने वाले मृत्यु के घाट उतारे जाँय, वहाँ पशुबल से ही शान्ति रह सकती है। अभिमान में चूर सत्ताधारी जहाँ निर्बलों का रक्त शोषण करें, वहाँ शोषित वर्ग यदि क्रान्ति न करे, तो क्या करे। अभिमानी शोषक वर्ग ही इस क्रान्ति का जिम्मेदार है। साम्यवाद में ही सुख संभव है। जब लोगों के हृदयों में शान्ति होगी, तभी वास्तविक शान्ति हो सकती है। शान्ति के लिए न्याय की सर्व प्रथम आवश्यकता है। यदि न्यायोचित अधिकार माँगने पर भी न मिलें, तो तेजस्वी व्यक्ति युद्ध का सहारा लेना चाहिए। युद्ध अनिवार्य है। अधिकार के लिए लड़ना सच्चा पौरुष है।'

चौथा सर्गः—(भीष्म का आत्म-विश्लेषण) भीष्म पितामह ने युद्ध के कारण स्पष्ट करते हुए कहा, "जो न्याय का हनन करता है, युद्ध का प्रारंभ वही करता है। अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील होना पाप नहीं है। महाभारत न केवल कुरुवंश के दुष्कर्मों के कारण हुआ, प्रत्युत्त अगणित नर-नारियों के पाप का दुष्परिणाम था। मनुष्य मे अहं प्रचुरता से विद्यमान है। वही उसे धोखे में डाल देता है। राजसूय यज्ञ में अनेकों ने तुम्हें भेंट दी थी, पर वे ग्लानि और द्वेष मन में लेकर लौटे थे। व्यास जी ने भविष्यवाणी करते हुए कहा था—"आकाश में कुटिल ग्रह एकत्रित हो रहे हैं; संसार में महासंग्राम होने वाला है। १३ वर्ष पश्चात् भयंकर क्रान्ति और युद्ध होगा। विश्व में हा-हाकार मच जायगा।" व्यास जी की बात सत्य थी, क्योंकि वे भविष्य द्रष्टा थे। आज यदि बुद्धि के फेर में

न पड़कर मैं शुद्ध स्नेह को पहचान पाता, यदि दण्डनीति का स्थान करुणा ने ले लिया होता, यदि मंत्रित्व के कर्त्तव्य को दलितों के रक्त बलि कर पाता, तो आज महाभारत का मुख न देखना पड़ता। अब वास्तविकता का सामना करना ही उचित समझता हूँ।"

पाँचवाँ सर्गः—( युधिष्ठिर का आत्म-निरीक्षण ) एक ओर राजतिलक की तैयारियाँ हो रही थीं, दूसरी ओर पश्चाताप और आत्म-ग्लानि में डूबे युधिष्ठिर चिन्तित होकर तप, त्याग और करुणा की उपयोगिता पर विचार कर रहे थे। वह समस्त रक्तपात का उत्तरदायी स्वयं को ठहरा कर बड़े दुःखी हो रहे थे। वे सोच रहे थे, "राज्य लोभ ही मेरे पतन का कारण हुआ। युद्ध की जड़ यह सिंहासन ही था। यदि मेरे लोभ ने ही विजय पा ली है, तो मैं विजेता कहाँ रहा? मैं लोभ पर विजय प्राप्त करूँगा। इस राज्य का परित्याग कर सन्यास ले लूँगा।"

छठा सर्गः—( वर्तमान युग के प्रश्नों पर विचार ) इस सर्ग में कवि ने (१) आजकल के मानवता के ह्रास पर दुःख प्रकट किया है। आज भी संसार विषय वासना में पूर्ण मग्न है मुँह से व्यर्थ ही 'भगवान' कहता है, जब कि उसके विचार ईश्वर से दूर हैं। शोषण चल रहा है।

२—विज्ञान शक्ति का पुंज है। विज्ञान के द्वारा मानव ने प्रकृति पर पूर्ण अधिकार कर लिया है। आज का मनुष्य प्रकृति के पंच तत्त्वों की सहायता से मनमाना कार्य कर सकता है।

३—भौतिकता की उन्नति तो हुई है किन्तु आध्यात्मिकता का ह्रास हुआ है; शान्ति जाती रही है। आज का मनुष्य ईश्वर से दूर होता जा रहा है। आध्यात्मिक गुणों और वैज्ञानिक ज्ञान दोनों के योग से मनुष्य पूर्ण सार्थक हो सकेगा।

४—मनुष्यता का जो घोर अपमान मनुष्य द्वारा हो रहा है, वह हटना चाहिए। मनुष्य मनुष्य के बीच की दूरी टूटनी चाहिए। मानवता का प्रसार होना चाहिए।

५—वह ज्ञान जो साम्यवाद का प्रचार करे; न्याय और स्नेह पर अवलम्बित जो नये संसार का निर्माण करे, वही श्रेष्ठ है। जब हम ग—

दूसरे पर शंकाहीन हो प्रेमपूर्ण हृदय से विश्वास करेंगे, तब ही मानवधर्म का इतिहास बनेगा जब युद्ध के भय से पृथ्वी मुक्त हो जायेगी, तभी विश्व सुधामय होगा, धर्म कर्त्तव्य ही मनुष्य के पथ-प्रदर्शक होंगे। हे भगवान! साम्यवाद ही वह भाव है जो भारत में सुख-शान्ति पैदा करेगा।

सप्तम सर्गः—( युधिष्ठिर का अन्तर्ज्ञान ) उपरोक्त विवेचन सुनकर युधिष्ठर को कर्म का ज्ञान हुआ। उन्होंने संसार के विचारों का परित्याग किया। भीष्म ने उन्हें आत्माओं की समानता, प्रकृति की महानता, साम्य-वाद द्वारा शान्ति प्राप्ति, श्रम की महत्ता का ध्यान दिलाया। भीष्म ने कहा, "हे युधिष्ठिर! व्यक्तिगत मुक्ति पाने का प्रयत्न न करो। कर्मण्य मनुष्य कभी सन्यास ग्रहण नहीं करता। मनुष्य को इसी वास्तविक लोक में विचरण करना पड़ता है। आज पश्चाताप के कारण तुम सन्यास की बात सोच रहे हो, यह पलायनवाद तुम्हें कर्त्तव्य-च्युत कर देगा। एक बार जो इस पलायनवाद के चंगुल में फँसा, फिर उसका निस्तार नहीं। सन्यास के नाम पर मनुष्य अकर्मण्य हो जाता है। कर्मण्यता से पूर्ण जग की हलचल यह सन्यास नहीं सह सकता.......कर्म सन्यासी बनकर पृथ्वी का उत्तरदायित्व भार सँभालो।"

## कथानक की विशेषताएँ

विस्तार से 'कुरुक्षेत्र' के कथानक पर ऊपर विचार हो चुका है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि कथानक स्वल्प है। उसमें कवि का मन नहीं रमा है। अपने विचारों को स्पष्ट करने के हेतु उसे एक युद्ध सम्बन्धी कथानक की आवश्यकता थी। भीषण महाभारत युद्ध की पृष्ठभूमि को ले कर महाकवि ने एक साधारण से कथानक का निर्माण कर लिया है। वास्तव में देखा जाय तो इस महाकाव्य में कोई कहानी है ही नहीं प्रबन्धात्मकता स्थान-स्थान पर खण्डित होती गई है। बरबश उन्हें शृङ्खला में बाँधने का विफल प्रयत्न किया गया है। सर्वत्र विचार ही विचार हैं। ये विचार किसी ज्ञानी विचारक के मस्तिष्क का चमत्कार भर कहे जा सकते हैं। विचार प्रधानता के कारण काव्य-वैभव को हानि पहुंची है। कहीं-कहीं चिन्तन की इतनी प्रधानता है कि ऐसा प्रतीत होता है मानों

कवि यह भूल गया है कि वह कविता लिख रहा है, या शुष्क आध्यात्म चर्चा कर रहा है।

स्वयं दिनकर जी ने कथानक के प्रति अरुचि प्रकट करते हुए लिखा है, "मुझे जो कुछ कहना था, वह युधिष्ठिर और भीष्म का प्रसंग उठाये बिना भी कहा जा सकता था, किन्तु तब यह रचना शायद प्रबन्ध के रूप में नहीं उतरकर मुक्त बनकर रह गई होती।"

इससे स्पष्ट है कि कवि प्रबन्धात्मकता बनाये रखना चाहता है। उसे महाकाव्य के कथानक की नाना शृङ्खलाएँ जोड़ने का ध्यान है। यों वह विचारों से भरा हुआ है। विचार प्रकट करने के लिए उसे कोई आधार चाहिए था। वह आधार उसे महाभारत युद्ध के विध्वंस से उत्पन्न परिस्थितियों में प्राप्त हो गया और उसने अपनी प्रबन्धात्मकता की रक्षा करते हुए विचार प्रकट कर डाले। पर जो कुछ वे अभिव्यक्त करना चाहते थे, वह स्वतन्त्र रूप से भी कहा जा सकता था। वास्तव में, यह प्रबन्धात्मकता केवल ऊपरी है। प्रबन्ध की एकता उसमें अभिव्यक्त विचारों की है, कहानी की नहीं। कहानी तो अणु मात्र ही है। इस सम्बन्ध में हम प्रो० कामेश्वर जी शर्मा की सम्मति से सहमत हैं। शर्मा जी ने ठीक ही लिखा है :—

" 'दिनकर जी' ने सारे कुरुक्षेत्र में कहा क्या है? वही जो उनके छठे सर्ग में कहा है—"श्रेय उसका बुद्धि पर चैतन्य उर की जीत; श्रेय मानव की असीमित मानवों की प्रीत; एक नर से दूसरे के बीच का व्यवधान तोड़ दे, जो बस वही ज्ञानी वही विद्वान्।" छठा सर्ग कुरुक्षेत्र का प्राण है, और उस प्राण का सम्बन्ध न तो युधिष्ठिर की देह से है और न भीष्म की देह से है। वह मुक्तक है·······कुरुक्षेत्र का प्रत्येक सर्ग अपने आपमें मुक्तक है। प्रथम सर्ग द्वितीय से सर्वथा स्वतन्त्र; द्वितीय तृतीय से; तृतीय चतुर्थ से और इसी प्रकार सभी सर्ग। जिस तरह किसी वाद-विवाद में भाग लेने वाले सभी स्वतन्त्र वक्ताओं को एक सूत्र में बाँधने वाली वस्तु, विवाद का विषय रहा करती है और यह विषय केवल भीष्म और युधिष्ठिर का ही

नहीं हो सकता—'कुरुक्षेत्र' के युग के किसी भी चेतन प्राणी का हो सकता है।*

तात्पर्य यह कि "कुरुक्षेत्र" की कथा सुनियोजित नहीं है। उसकी शृङ्खलाएँ यत्र-तत्र टूटी हुई हैं।" दिनकर के विचारों के वाहक युधिष्ठिर और भीष्म हैं; उनके कंधे इतने मजबूत हैं कि वे सतयुग, त्रेता और कलियुग तक के सभी विचारों और अनुभवों को लेकर आगे चल सकते हैं। पर थोड़ी देर के लिए युधिष्ठिर को निकाल दीजिये, विचारों की यह एकता कहीं टूटती है ? कहीं नहीं। युधिष्ठिर विचार कहीं भी नहीं उठाते, वे सिर्फ भावात्मक प्रश्न उठाते हैं। यदि युधिष्ठिर को भी निकाल दें, तो भी विचारों की एकता कायम रहती है·······युधिष्ठिर तो भाव उपस्थित करते हैं, वे भाव शर-शय्या पर लेटे-लेटे भीष्म भी महसूस कर सकते थे और यदि सम्पूर्ण काव्य में सिर्फ भीष्म ही एकमात्र रहते और वे ही अपने आप विचारों का मंथन करते हुए चलते—तो मेरा ख्याल है कि प्रबन्ध की एकता और भी सुदृढ़ होती।"‡

विचारों की एकता भी सर्वत्र एक सी नहीं है। भिन्न-भिन्न प्रकार के विचार यत्र-तत्र जोड़ दिये गये हैं। छठे सर्ग को तो बिल्कुल हटाया जा सकता है। अन्तिम सर्ग में एकता को जारी रखा गया है पर वे स्थल दार्शनिक चिन्तन से बोझिल हो गए हैं। महाकाव्य के कथानक में जैसी प्रबन्धात्मकता हमें तुलसी के "मानस" में मिलती है, कुरुक्षेत्र की प्रबन्धात्मकता उससे कोसों दूर है। इसका कथा-शिल्प बिखरा हुआ है। कुरुक्षेत्र को प्रबन्ध काव्य कहना उचित नहीं है; इसे मुक्तक की कोटि में ही रखना उचित है। इसमें कोई प्रासंगिक कथा भी मूल कथानक के साथ नहीं जोड़ी गई है, जो महाकाव्य के लिए अनिवार्य है। संक्षेप में, महाकाव्य की कथा में जो क्रम होना चाहिए, वैसा सुसम्बन्ध क्रम "कुरुक्षेत्र" में नहीं है। कथा के प्रबन्ध की दृष्टि से यह असफल महाकाव्य है।

---

* प्रो० कामेश्वर शर्मा "कुरुक्षेत्रः अपनी ही कसौटी पर" पाटल नवम्बर १९५३।

‡ वही।

## कुरुक्षेत्र में चरित्र-चित्रण

युधिष्ठिर:—इस महाकाव्य में दो प्रमुख पात्र हैं—युधिष्ठिर त भीष्म। युधिष्ठिर को इसका नायक मान सकते हैं। महाकाव्य का प्रारम उनकी विचार-धारा से होता है। युधिष्ठिर सत्यनिष्ठ, शान्तिपोषक आध्य त्मवादी महापुरुष हैं। महाभारत युद्ध में मरे हुए व्यक्तियों को देखक उनके हृदय में भयंकर पीड़ा होती है। वे पश्चाताप एवं आत्म-ग्लानि मे दग्ध होने लगते हैं :—

"सत्य ही तो मुष्टिगत करना जिसे,
चाहता था, शत्रुओं के साथ ही।
उड़ गए वे तत्त्व, मेरे हाथ में,
व्यंग्य, पश्चाताप केवल छोड़कर।"

उनकी धिक्कारती हुई आत्मा की चीत्कार देखिए—

"रक्त से छाये हुए इस राज्य को,
वज्र हो कैसे सकूँगा भोग मैं।
आदमी के खून में यह है सना,
और है इसमें लहू अभिमन्यु का।"

भीषण रक्तपात एवं नर संहार से उत्पन्न आत्म-ग्लानि के आवेश में आकर वे आत्म-निरीक्षण करते हैं :—

"करूँ आत्म-घात तो कलंक और घोर होगा,
नगर को छोड़ अतएव वन जाऊँगा;
पशु-खग भी न देख पायें, जहाँ छिप किसी
कन्दरा में बैठ अश्रु खुल के बहाऊँगा;
जानता हूँ पाप न धुलेगा वनवास से भी,
छिपा तो रहूँगा, दुःख कुछ तो भुलाऊँगा;
व्यंग्य से बिंधेगा कहीं जर्जर हृदय तो नहीं,
वन में कहीं तो धर्मराज न कहाऊँगा।"

युधिष्ठिर क्षमा, दया, करुणा की प्रतिमूर्ति हैं, तन-बल के अतिरिक्त उन्हें मनोबल, आध्यात्मिकता और न्याय विवेक में विश्वास है।

में पूर्ण विश्वास है। वे आदर्शवादी ज्ञानी प्रतिभावान नृप हैं। ऐश्वर्य में रहने पर भी वे सन्यस्त वृत्ति के व्यक्ति हैं। वे गम्भीर चिन्तक एवं विद्वान् विचारक हैं।

भीष्म—परम तेजस्वी, न्याय एवं कर्त्तव्य परायण भीष्म विख्यात मनीषी विद्वान, ज्ञानी और गंभीर विचारक हैं। जब युधिष्ठिर संशय में पड़ गए और आत्मग्लानि से परिपूर्ण हो गये, तो शर शय्या पर पड़े-पड़े भीष्म ने उन्हें ज्ञान और विवेक दिया, अपने तर्क और बुद्धि से युधिष्ठिर के संशय को दूर किया, अपनी आध्यात्मिकता और महानता से अज्ञान का अन्धकार दूर किया। उनके प्रतिनिधि विचार निम्न वक्तव्यों में प्रकट होता है—

'किसने कहा, पाप है समुचित स्वत्व-प्राप्ति-हित लड़ना!
उठा न्याय का खड्ग समर में अभय मारना-मरना।
क्षमा, दया, तप, तेज मनोबल की दे वृथा दुहाई।
धर्मराज, व्यंजित करते तुम मानव की कदराई॥

स्वयं अपने चरित्र के विषय में उनका विश्लेषण देखिए—

'यह जन कभी किसी का अनुचित दर्प न सह सकता था,
कहीं देख अन्याय किसी का मौन न रह सकता था।'

× × × ×

'धर्म, स्नेह दोनों प्यारे थे बड़ा कठिन निर्णय था,
अतः एक को देह, दूसरे को दे दिया हृदय था।'
'दिया धर्म को भीति, कर्म मुझसे जेवा लेता था,
करने को बलि पूर्ण स्नेह नीरव इंगित देता था।'
लो, अपना सर्वस्व पार्थ! यह मुझको मार गिराओ।

युधिष्ठिर को दिया हुआ उनका अन्तिम उपदेश उनके आदर्शों को स्पष्ट करता है—

'आशा के प्रदीप को जलाये चलो धर्मराज,
'एक दिन होगी मुक्त भूमि रण-भीति से;

भावना मनुष्य की न राग में रहेगी लिप्त,
सेवित रहेगा नहीं जीवन अनीति से;
हार से मनुष्य की न महिमा घटेगी और,
तेज न बढ़ेगा किसी मानव का जीत से;
स्नेह-बलिदान होंगे माप नरता के एक
धरती मनुष्य की बनेगी स्वर्ग प्रीति से।'

दिनकर जी ने भीष्म और युधिष्ठिर दोनों के चरित्रों को बड़े तर्क-पूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया है। दोनों में नवीनतम विचारों का समावेश है, पर उन्हें पौराणिक वातावरण में बड़ी सुन्दरता से जड़ दिया गया है। दोनों में मौलिक विचारों को रखा गया है।

**कुरुक्षेत्र में विचार सौंदर्य :—**

पहले कहा जा चुका है कि 'कुरुक्षेत्र' एक गंभीर आध्यात्मिक-राजनैतिक विचार प्रधान महाकाव्य है। इसमें कवि ने गूढ़ विचारधारा का स्पष्टीकरण किया है। देश, विदेश तथा समाज की नाना भौतिक एवं आध्यात्मिक समस्याओं का विवेचन कुरुक्षेत्र में उपलब्ध है। इसकी विचार धारा को दो मूल धाराओं में विभक्त किया जा सकता है—

१—राजनैतिक और सामाजिक समस्याएँ।

२—धार्मिक नैतिक एवं आध्यात्मिक समस्याएँ।

**राजनैतिक एवं सामाजिक वर्ग :—**

इस वर्ग के अन्तर्गत हम अनेक समस्याओं का विवेचन मिलता है; जैसे कृषक और जमींदार; मजदूर और महाजन; शोषक और पूँजीपतियों का मायाजाल; मनुष्य मनुष्य में अन्तर; ऊँचनीच की समस्याएँ, वैज्ञानिक प्रगति तथा मानवता की सेवा या विध्वंस, भीषण परिणाम; वैज्ञानिक मनुष्य की निरर्थक दौड़ और बुद्धिवाद राजनैतिक क्षेत्र में कवि ने साम्यवाद की प्रशंसा; अहिंसा युद्ध का विरोध और १९४६ तक के शासन की नीति पर असंतोष प्रकट किया है। नवीन और प्राचीन के शासन का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। युद्ध के ध्वंस, किन्तु उसकी अनिवार्यता पर भी विचार प्रस्तुत किए हैं—

भौतिकता में लिप्त आधुनिक अशान्त मानव का एक चित्र देखिए—

यह अभी पशु है; निरा पशु हिंस्र रक्त पिपासु,
बुद्धि उसकी दानवी है स्थूल की जिज्ञासु।
कड़कता उसमें किसी का जब कभी अभिमान,
फूँकने लगते सभी हो मत्त, मृत्यु-विषाण।
यह मनुज ज्ञानी, शृगालों, कुक्कुरों से हीन—

× × × ×

इस मनुज के हाथ से विज्ञान के भी फूल,
वज्र होकर छूटते शुभ धर्म अपना भूल।

हमारे समाज से जब तक ऊँच-नीच का कृत्रिम भेदभाव दूर नहीं होता, तब तक कैसे सुख-शान्ति स्थापित हो सकती है। कवि ने कहा है—

"एक नर से दूसरे के बीच का व्यवधान,
तोड़ दे, जो, बस वही ज्ञानी, वही विद्वान,
और मानव भी वही।"

पूँजीवाद एवं शोषण का एक चित्र देखिए—

एक मनुज संचित करता है, अर्थ पाप के बल से,
और भोगता उसे दूसरा, भाग्यवाद के छल से।

हमारा आदर्श क्या हो?

'नर समाज का भाग्य एक है, वह श्रम वह भुज बल है,
जिसके सम्मुख झुकी हुई, पृथ्वी, विनीत नभ तल है।'

भाग्यवाद दूर करना हमारा परम धर्म है—

'भाग्यवाद आवरण पाप का और शस्त्र शोषण का,
जिससे रखता दबा एक जन भाग दूसरे जन का।'

साम्यवाद से ही देश का सच्चा कल्याण संभव है। जब तक हमारे देश में अमीर गरीब सबों को समानरूप से न्यायोचित आवश्यकताएँ प्राप्त न होंगी, शान्ति कदापि प्राप्त न होगी। संघर्ष उस समय तक लगातार चलेगा, जब तक सबको समान सुख नहीं मिलेगा। यदि पूँजीपति और सत्ताधारी स्वार्थ को त्याग दें और समष्टि के सुख का प्रयत्न करें, तो

वास्तविक शान्ति सुख प्राप्त हो। यह साम्यवाद ही विश्व को आनंदित कर सकता है—

"शान्ति नहीं तब तक जब तक सुख-भाग न नर का सम हो,
नहीं किसी को बहुत अधिक हो, नहीं किसी को कम हो।"

× × × ×

"न्याय शान्ति का प्रथम न्यास है, जब तक न्याय न आता,
जैसा भी हो, महल शान्ति का सुदृढ़ नहीं रह पाता।"

या तो दुष्टों का दमन हो, या निर्बलों को इतना सुदृढ़ बलशाली बना दिया जाय, जिससे समता पैदा हो जाय—

"रण रोकना है, तो उखाड़ विषदंत फेंको,
वृक-व्याघ्र-भीति से मही को मुक्त कर दो;
अथवा प्रजा के छागलों को भी बनाओ व्याघ्र,
दाँत में कराल कालकूट विष भर दो;
वट की विवशता के नीचे जो अनेक वृक्ष,
ठिठुर रहे हैं उन्हें फैलने का वर दो;
रस सोखता है जो मही का भीमकाय वृक्ष,
उसकी शिराएँ तोड़ो, डालियाँ कतर दो।"

व्यक्ति एवं समाज के प्रश्न में कवि ने समुदाय के भले बुरे का ध्यान रखने की ओर जोर देते हुए सत्य ही लिखा है—

"व्यक्ति का है धर्म तप, करुणा, क्षमा,
व्यक्ति की शोभा विनय भी, त्याग भी;
किन्तु उठता प्रश्न जब समुदाय का
भूलना पड़ता हमें तप त्याग को।"

**धार्मिक एवं नैतिक पक्ष :—**

दिनकर ने पाप-पुण्य; कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य; उचित अनुचित नए पुराने आदर्शों एवं मान्यताओं का निगूढ़तम विवेचन प्रस्तुत किया है। जब देश पर युद्ध के बादल मंडरा रहे हों तो —— [illegible] चिन्तन कैसे हो सकता है—

"......तब रहता कहाँ अवकाश है
तत्त्व चिन्तन का, गंभीर विचार का ?
आग की लपटें चुनौती भेजतीं
प्राणमय नर में छिपे शार्दूल को।"

पाप पुण्य में भावना का अन्तर ही मुख्य है—

"मुख्य है कर्त्ता-हृदय की भावना
मुख्य है यह भाव, जीवन-युद्ध में
भिन्न हम कितने रहे निज कर्म से।"

धर्माधर्म की व्याख्या भीष्म के द्वारा द्वितीय सर्ग में की गई है। कुछ अंश देखिए—

"है बहुत देखा सुना मैंने मगर,
भेद खुल पाया न धर्माधर्म का,
आज तक ऐसा कि रेखा खींच कर,
बाँट दूँ मैं पुण्य को औ पाप को।
जानता हूँ किन्तु जीने के लिए,
चाहिए अंगार जैसी वीरता।
पाप हो सकता नहीं वह युद्ध है,
जो खड़ा होता ज्वलित प्रतिशोध पर
छीनता हो स्वत्व कोई और तू,
त्याग तप से काम ले यह पाप है।
पुण्य है विच्छिन्न कर देना उसे,
बढ़ रहा तेरी तरफ जो हाथ है।"

जो न्याय का पालन न कर अन्याय का मार्ग ग्रहण करते हैं, वे ही युद्ध के उत्तरदायी कहे जा सकते हैं—

"चुराता न्याय जो, रण को बुलाता भी वही है।
युधिष्ठिर, स्वत्व की अन्वेषणा पातक नहीं है।
नरक उनके लिए है जो पाप को स्वीकारते हैं।
न उनके हेतु जो रण में उसे ललकारते हैं॥"

अहिंसा दानवों के लिए नहीं है। तपस्या सदैव हिंसा से हारती है। अपने अधिकारों के लिए युद्ध करना पुण्य ही है—

'किसने कहा, पाप है समुचित, स्वत्व-प्राप्ति-हित लड़ना।
उठा न्याय का खड्ग समर में अभय मारना मरना?
हिंसा का आघात तपस्या ने कब कहाँ सहा है?
देवों का दल सदा दानवों से हारता रहा है।"

सच्चे अर्थों में मनुष्य कौन है? किसमें आदर्श मानवता के गुण हैं इस का उत्तर कवि के मुख से सुनिये—

"व्योम से पाताल तक सब कुछ इसे है ज्ञेय।
पर, न यह परिचय मनुज का, यह न उसका श्रेय।
श्रेय उसका, बुद्धि पर चैतन्य उर की जीत;
श्रेय मानव का असीमित मानवों से प्रीत;
एक नर से दूसरे के बीच का व्यवधान
तोड़ दे जो, बस वही ज्ञानी, वही विद्वान,
और मानव भी वही।"

सर्वत्र कवि ने हमें सन्यास के स्थान पर कर्म का सन्देश दिया है। हम संसार को कठोरताओं से पलायन न करें, वरन् संघर्षों में जूझते रहें, अन्तिम समय तक लड़ते रहें, कर्म करें—यही कवि का संदेश है:—

"धर्मराज सन्यास खोजना कायरता है मन की,
है सच्चा मनुजत्व ग्रन्थियाँ सुलझाना जीवन की।
दुर्लभ नहीं मनुज के हित निज वैयक्तिक सुख पाना,
किन्तु कठिन है कोटि-कोटि मनुजों को सुखी बनाना।"

आदर्श मनुष्य वह है, जो इस पृथ्वी को कुछ श्रेष्ठ नर सुखकर बनाकर मृत्यु को प्राप्त हो। हम यदि पृथ्वी की सुखवृद्धि का ध्यान रखें, तो निश्चय ही पृथ्वी पर स्वर्ग की सृष्टि हो सकती है—

"होता विदा जगत से, जग को कुछ रमणीय बनाकर
साथ हुआ था जहाँ, वहाँ से कुछ आगे पहुँचाकर।"

तप, त्याग, क्षमा, अहिंसा उसी व्यक्ति को शोभा देती हैं, जो समर्थ

हो कवि को अहिंसा सत्याग्रह आदि साधनों पर भी विश्वास नहीं है। वह लिखता है—

"त्याग, तप, भिक्षा ? बहुत हूं जानता मैं भी मगर,
त्याग, तप, भिक्षा, विरागी योगियों के धर्म हैं;
याकि उनकी नीति, जिनके हाथ में शासन नहीं;
या मृषा पाषण्ड यह उस का पुरुष बलहीन का,
जो सदा भयभीत रहता युद्ध से मन मौन कर,
ग्लानिमय जीवन बहुत अच्छा मरण अच्छा नहीं।"

.... .... ....

"क्षमा शोभती उसी भुजंग को जिसके पास गरल हो,
उसको क्या दन्तहीन, विषरहित विनीत, सरल हो ?"

इस प्रकार "कुरुक्षेत्र" में नए-नए मौलिक विचार प्रस्तुत किए गए हैं। धर्म की विवेचना है, तो कर्त्तव्य और अधिकारों का भी निर्देश है। ये विचार गहन होते-होते आध्यात्म विश्लेषण तक की ऊँचाई पर चढ़ते गए हैं। छठे सर्ग में कवि ने नाना प्रकार के नए-नए विचारों को बड़ी मार्मिक शैली में अभिव्यक्त किया है। उसने दिखाया है कि विज्ञान तलवार के समान है। इसका प्रयोग मनुष्य की रक्षा, प्रेम, दीर्घजीवन आनन्द-समृद्धि के लिए होना चाहिए। रोग, अस्वास्थ्य, अकाल, मृत्यु का रोकना विज्ञान का ध्येय होना चाहिए। मनुष्य अपनी आत्मा का विकास करे। आत्मा के दैवी गुणों के विकास से ही मानव-मात्र को शान्ति प्राप्त हो सकती है।

इन विचारों के कारण हम "कुरुक्षेत्र" को अपने ढंग का अकेला महाकाव्य कह सकते हैं। गंभीर विचार, देश-विदेश की समस्याओं का चित्रण, पाप-पुण्य, धर्म-अधर्म का विवेचन ही इसका सौंदर्य है। जीवन दर्शन की दृष्टि से यह अद्वितीय महाकाव्य है।

कुरुक्षेत्र में महाकाव्यत्व

ग्रन्थ का कथानक पौराणिक-ऐतिहासिक है। उसमें जीवन दर्शन की महानता है। महाकाव्य के लिए जैसी सुगठित प्रबन्धात्मकता होनी चाहिए

वह इसमें नहीं पाई जाती। विचारों की एकता ही इसकी प्रबन्धात्मकता स्थिर रखती है।

इसके नायक युधिष्ठिर में उच्चकुलीन, धीरवीर क्षत्रीय महाकाव्य के नायक में जो गुण पाये जाने चाहिए पाये जाते हैं। इसमें प्रकृति चित्रण उपमान तथा अलंकारों के रूप में पाया जाता है। अन्य वर्णन नहीं हैं। रसों में वीर रस पाया जाता है। शेष शान्तरस है। शान्तरस को ही मुख्य रस कह सकते हैं क्योंकि इसमें नीतिधर्म चर्चा का बाहुल्य है। मंगलाचरण, सज्जनों की प्रशंसा और दुर्जनों की निंदा इत्यादि नहीं हैं। सर्ग १२ के स्थान पर केवल ७ ही हैं। छन्दों की विविधता पाई जाती है। घटनाओं की विवधता, जीवन की अनेक रूपता और संघर्ष पर्याप्त हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि इसमें महाकाव्य के सब गुण नहीं पाये जाते। इसे विचार नीति-प्रधान महाकाव्य कह सकते हैं।*

---

*सहायक ग्रन्थ :—डा० लक्ष्मीनारायण टंडन एवं श्री रामखेलावन कृत "कवि दिनकर और उनका कुरुक्षेत्र।"

उतने ही रहे हैं; वर्णनों में भी पर्याप्त परिवर्तन है। कुछ ने छन्दों का गृच वरवश बदला है। मंगलाचरण इत्यादि की कोई परिपाटी नहीं रही है। महाकाव्यकार वीर की अपेक्षा शान्त नायकों, उच्च श्रेणी के पुरुष को लेना पसंद करने लगे हैं। महाराणा प्रताप, जहाँगीर, नल नरेश, पृथ्वीराज, कुणाल इत्यादि भी महाकाव्य के नायक चुन लिए गए हैं। भाषा के क्षेत्र में सरलता और बोधगम्यता की ओर महाकाव्यकारों का झुकाव हो चला है। कुछ प्रबन्ध काव्य आकार में बड़े अवश्य हैं पर उन्हें महाकाव्य कहलाने का गौरव नहीं दिया जा सकता।

---

## कृष्णायन

तुलसीकृत "मानस" की भाषा-शैली पर एक विशद एवं गरिमामय महाकाव्य की सृष्टि पंडित द्वारिकाप्रसादजी मिश्र ने "कृष्णायन" द्वारा की है। तुलसी की अवधी भाषा में दोहों-चौपाइयों-सोरठों वाली शैली विलुप्त-प्रायः होती जारही थी। मिश्रजी ने श्री कृष्ण जैसे महापुरुष की जीवन-गाथा को लेकर उसी शैली को पुनरुज्जीवित कर प्रमाणित कर दिया है कि "रामचरितमानस" के समान अवधी भाषा में आज भी वैसी ही मधुर हृदय स्पर्शी कविता लिखी जा सकती है। यह महाकाव्य हमारे युग के गौरव की वस्तु है क्योंकि इसमें भारत के सांस्कृतिक पक्ष को पर्याप्त बल दिया गया है।

"कृष्णायन" के कथानक का निर्माण भगवान् कृष्ण के पुनीत चरित एवं कार्यों से सम्बन्धित है। तुलसी के "मानस" की तरह, "कृष्णायन" कृष्ण के जीवन के प्रधानकार्य, सिद्धांत एवं उद्देश्य को स्पष्ट किया गया है। कृष्ण चरित को तीन मुख्य भागों में विभाजित किया गया है (१) धर्म संस्थापक कृष्ण (२) गोपीवल्लभ राधाकृष्ण (३) बालगोपाल कृष्ण। × जैसे

× मिश्रजी के कृष्ण के बाल चरित पर सूर की छाप है। रामलीला के प्रसंग में भी मिश्रजी भावानुकूल भाषा को मधुर बना सके हैं। मथुरा खण्ड में उद्धव संवाद में भी सूर की छाया है। —गुलाबराय

"मानस" में हमें राम का पूरा सर्वाङ्गीण चरित्र प्राप्त हो जाता है, उसी प्रकार कृष्णायन में कृष्ण का सम्पूर्ण चरित सात काण्डों में प्रस्तुत किया गया है, कथानक के क्रम विकास में उसी प्रकार उत्कट भक्ति का समावेश किया गया है, दोहे चौपाई सोरठे छन्द हैं और व्रज अवधि मिश्रित भाषा है। "कृष्णायन" का प्रारम्भ मंगलाचरण से होता है। इसमें भी पुरानी परिपाटी का अनुसरण किया गया है जैसे—

"जन्मेउ वंशीधाम, जो जन जननी मुक्ति हित।
वंदउ सोई घनश्याम, मैं वन्दौं वीदान-तनय॥

.... .... .... ....

युग-युग हरि पद चूमि, भुक्ति-मुक्ति, जय जेहि लही
वंदहुँ भारतभूमि, हरिजननी हरियशमयी।"

प्रत्येक कवि युग की विचारधारा एवं जीवनदर्शन के अनुसार अपने पात्रों का चित्रण करता है। मिश्रजी ने कृष्ण को स्वयं अपने आदर्शों तथा अध्ययन के बल पर मनोवैज्ञानिक दृष्टि से कुछ परिवर्तन किए हैं। इनमें बुद्धिवाद का योग है। तर्क की कसौटी पर भी चरित्र सही मालूम हो, यह मनोवृत्ति स्पष्ट देखी जा सकती है।

डा० मुँशीराम शर्मा ने उचित लिखा है, "कृष्णायन के लेखक ने मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अपने चरितनायक के जीवन का अध्ययन करके कुछ उचित परिवर्तन किए हैं। इनसे पौराणिकता का परिहार होता है और आधुनिक युग के अनुकूल बुद्धिवाद की संतुष्टि परम्परा के अनुसार, जयद्रथ वध के प्रसंग में भगवान कृष्ण ने अपनी वैष्णवी शक्ति द्वारा असमय में ही सूर्यास्त के भ्रम में पड़कर अर्जुन की चिता के निकट पहुँचा तो अकस्मात आकाश में सूर्य-बिम्ब के दर्शन होने लगे। परिणामतः अर्जुन के धनुष से बाण छूटा और जयद्रथ शर—विद्ध होकर धराशायी होगया। इस प्रकार छल के द्वारा किसी प्रकार अर्जुन के प्राण बचाये जा सके और जयद्रथवध सम्पन्न हो सका। कृष्णायनकार ने छल से इस प्रसंग को अनुचित समझकर योद्धाओं के रण कौशल की अपूर्व अवतरणा द्वारा जयद्रथ-

वध भी सम्पन्न कराता है और अर्जुन के गौरव की रक्षा भी इसी प्रकार के कुछ परिवर्तन काव्य के अन्य स्थलों पर भी किए गए हैं।"

रस-सृष्टि की दृष्टि से "कृष्णायन" उत्कृष्ट काव्य है। मिश्रजी ने काव्य के सुन्दर भावपूर्ण स्थलों को बड़ी सफलता से प्रकट किया है। उसमें हृदय की अनुभूतियों, भावुक कल्पनाओं और कोमल भावों की सरल और मर्मस्पर्शी अभिव्यक्ति है। विभिन्न रसों का उद्रेक करने में मिश्र जी पटु हैं। उनके विषय में यह कहना सत्य ही है, "ऊँचे से ऊँचे कवियों ने रसानुभूति जाग्रत करने में जिन शैलियों को अपनाया है, उन सबको इस कवि ने अपनी व्यक्तिगत-प्रतिभा से निखार कर प्रस्तुत किया है। अनेक रस और भाव पारस्परिक सामंजस्य के साथ हमारे हृदय में भिन्न-भिन्न प्रकार के स्पन्दन उत्पन्न कर प्रकट होते और विलीन होते रहते हैं। किस रस का किस रस के साथ विरोध है तथा किस रस की किस के साथ मैत्री है, इसका इस सुकवि ने विशेष ध्यान रखा है।"

प्रकृति चित्रण में मिश्रजी को अद्भुत सफलता प्राप्त हुई है। नवोदित चन्द्रोदय का एक मर्मस्पर्शी वर्णन देखिए :—

"तजि प्राची दिशि कन्दरा, केसर किरण पसारि।
प्रकटेउ इन्दु मृगेन्द्र जनु, वारण तिमिर विदारि॥
दर्शित प्रथम व्योम अरुणाई। जनु वधु रोहिणी अधर ललाई।
उदित पाण्डु द्युति पुनि मनिहारी। कुल कामिनी कपोल अनुहारी॥
क्रमशः प्रकटित सित कर रूपा, विशद नवल वधु हास स्वरूपा॥
शोभित स्रवत सुधा निस्पन्दा, सिहरी निखिल प्रकृति सानन्दा॥

एक दूसरा चित्र देखिए—

"पर्ण अशोक विलोचन मोहन, वन श्री चरण अलक्तक शोभन।
शाल समुन्नत हरित चिरन्तन, शोभित लब्ध पिंग लघु सुमनन॥"

द्वारका काण्ड की इन दो पंक्तियों का भाव सौंदर्य देखिए—

"कुसुमित मधुनिधि माधवी कुसुमाकर शृङ्गार।
पुलकित लहि अंग-संग अनिल, अलि चुंबन गुँजार।"

देशकाल के अनुसार धर्म परिवर्तन होते रहने में मिश्रजी को विश्वास है। जब देश पर विपत्ति हो, तो वर्ण-व्यवस्था में भी आवश्यक परिवर्तन किए जाँय। एक स्थान पर उन्होंने लिखा है—

"परहिं विपति जब देश पै, सकल भेद बिसराय।
चारि वर्ण, योगी यतिहु, आयुध लेंहि उठाय॥"

धर्म का तात्पर्य है कि उसके द्वारा लोक कल्याण, बहुजनहित होना चाहिये। राज्य का हित सर्वोपरि है! मिश्रजी ने कहा है—

"सिरजे जल तन राज्य हित, विधि आयुध, धनु-बाण।
मनो राज्य हित हम लहे, श्रुति साहित्य पुराण॥"

भारत देश के वर्णन में कवि की राष्ट्रीयता प्रकट होगई है—

"मुकुट मनोहर हिम-गिरि शोभत। आनन सप्त सिन्धु मन मोहत।
मध्य देश जनु हृदय विशाला, कटि तट मनहुं विंध्य गिरि माला॥"

सबसे पुष्ट तत्त्व "कृष्णायन" का जीवन-दर्शन है। मिश्रजी हिन्दुत्व, भारतीय सभ्यता एवं अतीत संस्कृति के सच्चे उपासक हैं। बुद्धिवादी होते हुए भी वे अतीत भारतीय परम्परा के प्रति सच्चे रहे हैं। बड़े ऊँचे स्वर में पूर्वजों की संस्कृति का यशोगान आपने किया है। स्वयं कांग्रेसी विचारधारा और राष्ट्र-यज्ञ के अमर सन्यासी होते हुए भी मिश्रजी ने लिखा है—

"बुद्धि भावना संतुलन, आर्य धर्म आधार,
नष्ट भावना आज प्रभु, शेष बुद्धि व्यभिचार॥
करुणा आर्य धर्म आधारा, मानव सम पशु संग व्यवहारा

भारतीय ऋषियों द्वारा अर्जित ज्ञान की महिमा का वर्णन देखिए—

"करि तप ऋषिन लहेउ जो ज्ञाना, भयेउ न अजहुं सो निष्प्राणा।
बीज रूप सब निज उर धारी। मांगति कर्म भूमि नव वारी॥"

वस्तुतः "कृष्णायन" कथानक, भाव सौंदर्य, प्रकृति चित्रण, सूक्तियों, दोहे-चौपाइयों सोरठों, ब्रजमिश्रित अवधी भाषा, भक्तिभाव सभी दृष्टियों से

विशद एवं गरिमामय है। भारतीय संस्कृति की प्रतिष्ठा, कृष्ण के चरित्र का अपूर्व उत्कर्ष और अनुभूति की मार्मिकता इस महाकाव्य की मुख्य विशेषताएँ हैं।

---

## साकेत-संत

डा० बल्देवप्रसाद मिश्र कृत "साकेत-संत" और "कौशल-किशोर" दो श्रेष्ठ महाकाव्य हैं। मिश्रजी का "साकेत-संत" चौदह सर्गों में विभाजित साकेत के सन्त राम के भ्राता भरत के पावन चरित्र से सम्बन्धित महाकाव्य है। नायक भरत के चरित्र का यशोगान करने के लिए एक कथानक का निर्माण कर लिया गया है। भरत एक धीरोदत्त प्रजावत्सल, उच्च क्षत्रिय कुलोत्पन्न, सत्य और अहिंसा के पालक नायक हैं। डा० मिश्र ने भरत को साधना और कर्तव्य को श्रेष्ठतम साधक चित्रित किया है। जैसे गुप्त जी ने उर्मिला के चरित्र गौरव के प्रतिपादन के लिए "साकेत" की रचना की है, डा० मिश्र ने भरत के चरित्र का महत्त्व, पवित्रता और कर्त्तव्यपरायणता चित्रित की है। मिश्र जी ने भरत के पावन चरित्र को दृष्टि में रख कर उन्हें "साकेत-संत" के नाम से कह कर पुकारा है। भरत के विषय में दो एक उक्तियाँ देखिए—

"धन्य वह सन्त था राम हेतु राम से भी,
 दूर हट राम के समीप रहा आया है।
धन्य वह तार भारती की मंजु वीन का था,
 जिसके स्वरों ने हमें भरत दिलाया है।"

राम वन-गमन की हृदय विदारक घटना सुनकर भरत की क्या दशा हुई इसका मार्मिक चित्र मिश्र जी ने इस प्रकार अंकित किया है :—

'झंझा से काँपे, धधक उठे दावा से।
क्षण भर में रुक कर अचल हुए ग्रीवा से॥
मस्तक पर सौ-सौ गिरीं बिजलियाँ आकर।
गिर पड़े भूमि पर भरत सुचेत गँवाकर॥"

पादुका-अर्पण कर प्रसंग बड़ा मर्म स्पर्शी है। भरत का भातृ-प्रेम और राम के प्रति अनन्य भक्ति देखिए—

"उर तो उर - प्रेरक का चेरा,
वह दुख दे या सुख पहुंचाये।
आया था अपनी इच्छा से,
जाऊँगा प्रभु - इच्छा लेकर।
मैंने क्या - क्या आज न पाया,
इस वन में अपनापन देकर।
राज्य उन्हीं का यहाँ वहाँ भी,
मैं तो केवल आज्ञाकारी।
चौदह वर्ष धरोहर सँभाले,
बल - सबल पाऊँ दुख हारी।

.... .... .... ....

आशीर्वाद मिले वह जिससे,
प्रभु में जीवन-स्रोत मिला लूँ।
उनके लिए उन्हीं की चीजें,
पा उनका आदेश, संभालूँ।
फूले फले जगत् यह उनका,
इसीलिए बस, प्यार करूँ मैं।
और अवधि ज्यों ही पूरी हो,
सारा भार उतार धरूँ मैं॥"

स्वयं राम भरत के उज्ज्वल चरित्र के सम्बन्ध में क्या धारणाएँ रखते हैं देखिए—

"बोले राम—" धर्म संकट से, आज भरत ने जगत उबारा
सब का दुख अपने में लेकर, सब को सुख का दिया सहारा।

वह अनुराग त्याग-मय अनुपम, बड़े भाग्य, यदि कोई पावे।
देव मनुज की महिमा समझें, सुर नर के दर्शन कर जावे।

.... .... .... ....

आज भरत खोकर भी जीते, और जीत कर भी मैं हारा।
मेरे ही कंधों पर पटका, उसने बोझ राज्य का सारा।

.... .... .... ....

मुझे परम सन्तोष इसी में, रख ली मेरी लाज उन्होंने।
इस खूबी से आज सुधारा, सब लोगों का काज उन्होंने॥

भारत अखण्ड रहेगा, इस तत्त्व को कवि ने बड़े मार्मिक ढङ्ग से व्यक्त किया है। राष्ट्रीयता के विचार, दक्षिण का अनार्य के प्रभाव से बचाकर रखने की भावना मिश्र जी ने इस प्रकार प्रकट किए हैं :—

राम— "दक्षिण तो मैं देखूंगा ही, पर उत्तर पर आँच न आवे।
करो व्यवस्थ भरत कि मणि, की जगह विदेशी काँच न आवे।"
कहा जनक ने, "पूर्व दिशा में, स्थिर है अपनी आर्य पताका।"
कैकेयी ने कहला भेजा, "मैं साधूँगी पश्चिम नाका॥
बोले राम कि "ऐसा है तो, साधु भरत का भारत प्यारा।"
होगा एक अखण्डित अनुपम, अग जग की आँखों का तारा॥

.... ..... .... ....

भारतीय संस्कृति के प्रति कवि की निष्ठा देखिए—

"भारत जब तक जग में होगा, भारतीयता तब तक होगी।
भारतीयता होगी जब तक, जग होगा तब तक नीरोगी।
जग नैरुग्यवती मानवता, फिर से इस भू पर छा जावे
जो जिस थल पर हुआ नियोजित, वह उस थल पर सुख पावे।"

"साकेत-सन्त" महाकाव्य की विशेषताएँ क्या-क्या हैं? सर्व प्रथम इसमें विचार दर्शन और दृष्टिकोण की आधुनिकता है। "इसमें प्राचीनता के साथ आज का प्रजातन्त्रवाद सामन्तवाद-साम्राज्यवाद और समाजवाद

आदि का सुन्दर समन्वय किया गया है।" यह जिस युग की रचना है, उसमें गाँधीवाद का प्रभाव सर्वत्र छाया हुआ था। "साकेत-सन्त" महात्मा गाँधी जी को समर्पित भी किया गया है। अतः इसके कवि पर गांधीवाद का प्रभाव भी स्पष्ट दीखता है। अहिंसा एवं करुणा को प्रधानता दी गई है। कवि ने एक स्थान पर स्वयं कहा है—

"करुणा का बल अतुलित है,
क्षत्रियता जिस पर वारी।

अथवा

"सहो काँटे कि यह उर फूल होवे।
सहो यह दुख कि विधि अनुकूल होवे।

शोषितों के प्रति सहानुभूति और साम्यवाद की पुष्टि मिश्रजी ने की है—
"अभय हों सभी, शक्त हों सभी, न कोई कहीं दुखी हों लोग।
राज्य से खुले रहें सब ओर, अशक्तों की रक्षा के योग॥
योग्यता भर सब ही श्रम करें, और आवश्यकता भर प्राप्ति।
राज्य का हो यह ही आदर्श, राज्य की हो यह पूर्ण समाप्ति॥"

दूसरी विशेषता कथानक की नवीनता है। रामायण के कथानक को ही मिश्र जी ने इस प्रकार परिवर्तित किया है कि नवीनता आ गई है। प्रो० मुंशीराम जी शर्मा के शब्दों में कथानक की विशेषताएं देखिए—

"साकेत-सन्त" के कथानक में दो स्थानों पर नवीनता है। प्रायः सब कवि चित्रकूट में भरत के ससैन्य आगमन पर लक्ष्मण के क्रोध का वर्णन करते हैं। यह क्रोध तभी शान्त होता है जब भरत आकर राम के चरणों पर लोटने लगते हैं। "साकेत-संत" में भरत का डेरा रात्रि आ जाने पर चित्रकूट के समीप ही लग जाता है। प्रातः वेला में भरत अपने डेरे से और और भक्तों के हृदय की बात जानने वाले राम अपनी कुटिया से एक दूसरे की ओर चल पड़ते हैं और बीच ही में दोनों का मिलाप हो जाता

है। दूसरी नवीनता चित्रकूट सभा के आयोजन में है। अन्य कवियों ने भरत और राम का संवाद इसी सभा में कराया है; पर "साकेत-संत" में राम और भरत प्राकृतिक दृश्यों की गोद में भ्रमण करने चले जाते हैं। वहीं राम भरत को अपना यह उद्देश्य बताते हैं कि दक्षिण-पथ को अनार्य प्रभाव से बचाकर आर्य संस्कृति की ओर लाने के लिए मैं वन में आया हूँ। भरत भी राम के इस आदर्श को आदेश मान कर शिरोधार्य करते हैं।"

शैली की दृष्टि से यह महाकाव्य सरल प्रवाहमयी भाषा में लिखा गया है। कुल १४ सर्ग हैं, प्रत्येक सर्ग नवीन छन्द से प्रारम्भ होता है; पर्वत, वन, सरिताओं के वर्णन अच्छे हैं। कथोपकथन प्रणाली को प्रयोग में लाया गया है। अनुभूतियों के वर्णन में कल्पना और भावना का अच्छा पुट है पर चरित्र-चित्रण और पात्र कल्पना में कोई नवीनता नहीं है। सर्ग निर्वाह और प्रबन्धगत विशेषताएं विशेष महत्त्वपूर्ण हैं।

---

## सिद्धार्थ

(कविवर श्री अनूप शर्मा कृत "सिद्धार्थ" महात्मा बुद्ध के चरित्र पर विरचित शान्तरस प्रधान "प्रिय प्रवास" जैसी संस्कृत वृत्तों वाली पद्धति का ऐतिहासिक महाकाव्य है।) इसमें बुद्ध के चरित्र को जन्म से लेकर निर्वाण तक चित्रित किया गया है।

प्रथम सर्ग में शुद्धोदन के राज्य की सुख श्री समृद्धि का चित्रण, राजा-रानी का स्वप्न और बुद्ध के अवतार की घोषणा है; द्वितीय एवं तृतीय में बुद्ध की बाल-लीला, शिक्षा-दीक्षा मृगया का वर्णन है; चौथे में वैराग्य भावना के प्रारम्भ; पाँचवें में सिद्धार्थ का विराग; छठे में यशोधरा से पाणि-ग्रहण; सातवें एवं आठवें में विवाहित जीवन; आमोद प्रमोद, विहार इत्यादि का चित्रण है। नवें सर्ग में उत्तरोत्तर पुष्ट होते हुए वैराग्य भाव; दशम में सिद्धार्थ के भावी जीवन का पूर्वाभास; ग्यारहवें में छन्द के साथ

"कुणाल" अशोक के पुत्र कुणाल के चरित्र की पवित्रता, सात्त्विकता और निष्ठ को व्यक्त करने वाला राष्ट्रीय महाकाव्य है। अशोक की पत्नी साम्राज्ञी तिष्य रक्षिता कुणाल के सौंदर्य पर आसक्त हो गई और प्रणय निवेदन किया कुणाल ने इसका तिरस्कार किया; विमाता को यह बुरा लगा और उसने प्रतिशोध लिया—यही ऐतिहासिक कथानक १६ सर्गों में विभाजित होकर इस महाकाव्य में स्पष्ट किया गया है।

प्रथम तीन सर्गों में पाटलीपुत्र का वैभव, कुणाल का जन्म, शैशव और यौवन-सौंदर्य इत्यादि चित्रित है; चतुर्थ सर्ग में कलिंग विजय पर एक उत्सव हो रहा है; कुणाल मंच पर कामदेव का अभिनय करते हैं, तिष्यरक्षिता उसे खिड़की से देखकर मुग्ध होती है। पाँचवें सर्ग में रानी की वासना एवं क्षणिक ललचाव आन्तरिक संघर्ष, छठे में प्रणय निवेदन, सातवें आठवें में कुणाल की आँखें निकाल कर पत्नी सहित निर्वासन, नवम् में चर के मन का द्वन्द्व; दशम में कुणाल का निर्वासन, अन्तिमसर्गों में कुणाल का पुनः वापस आना, पश्चाताप, रानी को दंड, फिर कुणाल के आग्रह से क्षमा दान—इत्यादि घटनाएँ वर्णित हैं। कथानक का निर्माण सफलता से हुआ है। कुणाल की निष्ठा और तिष्यरक्षिता का मनः संघर्ष बड़े मनोवैज्ञानिक रूप में चित्रित किया गया है। कथानक उत्तरोत्तर गतिशील रहता है। आठवें सर्ग में तिष्यरक्षिता के मन में उठा वासना और बुद्धि का द्वन्द्व, तथा नवें में कवि के स्वतन्त्र विचार, पराधीनता से हानियाँ—महत्त्वपूर्ण हैं।

चरित्र चित्रण की दृष्टि से यह महाकाव्य सफल है। इसके नायक अशोक-पुत्र कुणाल सुन्दर, चरित्रवान, विवेकशील, कर्त्तव्यनिष्ठ दृढ़ चरित्रवान व्यक्ति हैं। उनके चरित्र की पवित्रता और दृढ़ता को प्रस्तुत करना ही द्विवेदी जी का मुख्य उद्देश्य रहा है। कुणाल राज्याज्ञा द्वारा अंधे कर मय पत्नी के निकाल दिये जाते हैं पर वे अपनी माता को क्षमा-दान देते

"पुत्र के हित राजमाता को मिले यह दण्ड,
कौन होगा और इससे पाप अधिक प्रचण्ड।
महाराज ! प्रथम हमारा, शीश करलो छिन्न,
फिर जननि का शीश होगा, कण्ठ से विच्छिन्न।"

स्वयं अशोक अपने पुत्र कुणाल के विषय में कहते हैं—

"दुर्दिनों के मेघ से था घिरा मौर्याकाश,
एक कुल-नक्षत्र से, छाया अनन्त प्रकाश !"
होगईं अगणित आँखें बन्द, मह न वे सकीं अतुल आनन्द।
"जयति युवराज कुणाल महान् गुँजने ये अम्बर में छन्द !"

कुणाल हर प्रकार से आदर्श रूप में चित्रित किया गया है विनय और दृढ़ता, पवित्रता और सात्विकता उनकी विशेषताएँ हैं। तिष्य-रक्षिता वासनालोलुप, दुर्बलचरित्रा, रूपगर्विता, मानिनी प्रतिशोध की भावना से युक्त दुर्बल रानी है। सम्राट् अशोक वैभववान् हिन्दू अधिपति हैं। कंचना स्वामीभक्त पतिप्राणा पत्नी है। सभी चरित्र बड़ी सुन्दरता से उभारे गए हैं। कंचना को अधिक स्थान नहीं मिल सका है।

इस महाकाव्य में शृङ्गार, करुण तथा शान्तरस मुख्य हैं। करुणा का स्रोत बहा दिया गया है। कुणाल के अन्धा होने पर तक्षशिला निवासियों का विलाप देखिए—

"क्रूर नियति ने ली निकाल अंबुज सी आँखें,
उड़े न ऊपर प्राण रह गईं कंपती पाँखें।
उन आँखों की कथा व्यथा बनकर मंडराई,
एक अछोर वेदना बन प्राणों में छाई॥"

बारहवें सर्ग में कुणाल की अतीत स्मृतिएँ विह्वलता से भरी हैं—

"है कहाँ आज मधु की बहार ?
मेरे वैभव का इन्द्र चाप।
तनता था जो बन कर अमाप
किसने इसको कर दिया भंग

में करुण रस की अभिव्यंजना अच्छी हुई है। युद्ध का वर्णन बड़ा चित्रो-पम है। इस महाकाव्य का मुख्य रस वीर है पर कहीं-कहीं छायात्मक शैली के भी वर्णन हैं। वीभत्स रस भी है—

"हल्दीघाटी अवनि पर सड़ते थीं बिखरी लाशें।
होती थी घृणा घृणा को बदबू करती थी लाशें।"

प्रकृति वर्णन सरल स्पष्ट पर मर्म स्पर्शी है जैसे—

"जब से शशि को पहरे पा, दिनकर सोगया जगाकर।
कविता सी कौन छिपी है, यह ओढ़ रुपहली चादर॥

× × × ×

घूँघट पट खोल शशी से, हँसना है कुमुद किशोरी।
छवि देख देख बलि जाति, बेसुध अनिमेष चकोरी॥"

"हल्दीघाटी के लेखक ने महाराणा प्रताप की टीस वेदना और निर्भीक आत्मा की पुकार को अनुभव किया है और अनुपम शक्ति से प्रस्तुत महाकाव्य में उभारा है। यहाँ वर्णित ऐतिहासिक कथानक, चरित्र चित्रण, संलाप और छोटे-छोटे दृश्य कवि की जागरूक चेतना और कभी न बुझ सकने वाली अग्नि धधक रहे हैं, जो आज भी मानवीय प्रच्छन्न शक्तियों को उद्‌बुद्ध करते हैं।"*

---

## आर्यावर्त

'आर्यावर्त' पंडित मोहनलाल महतो वियोगी कृत अतुकान्त युक्त छन्द में विरचित महाकाव्य है, जिसमें पराक्रमी पृथ्वीराज के चरित्र गौरव को विकसित किया गया है। प्राचीन इतिहास एवं जनता में प्रचलित भावनाओं की पृष्ठभूमि पर इस महाकाव्य में पृथ्वीराज के अपूर्व शौर्य, जयचन्द के षड्यंत्र से पराजय, अन्त में उनकी आँखें फोड़ी जाने आदि की कहानी को अतुकान्त मुक्त छन्द में आबद्ध किया गया है।

---

* श्रीमती शचीरानी गुर्टू एम० ए० 'काव्य दर्शन' पृष्ठ ४७

प्रत्यंचा भी दी है उतार ?
है कहाँ आज मधु की बहार ?"

द्विवेदी जी ने देशकाल की ऐतिहासिक विशेषताएँ लक्षित करने का पर्याप्त ध्यान रखा है। भावों की सरलता, राष्ट्रीयता, भारतीय चरित्र की निष्ठा आदर्श की स्थापना मार्मिक रूप से हुई हैं। प्राचीन सामंतकालीन रूचि, संस्कारों और वातावरण का यथातथ्य चित्रण किया गया है। भाषा सरल और प्रवाहमयी है। शान्त और करुण-रस का उचित पर्य-वसान, साथ ही इतिहास प्रसिद्ध घटना का काव्यगत निर्माण कुछ ऐसा अनूठा बन पड़ा है जो कवि की कलात्मक रुचि और गुणग्राही प्रतिभा का द्योतक है। कुणाल अपने ढंग का अनूठा ऐतिहासिक आदर्शवादी महा-काव्य है।

---

## हल्दीघाटी

श्री श्यामनारायण पाण्डेय के दो महाकाव्य महत्त्वपूर्ण हैं १—"हल्दी-घाटी" और "जौहर"। इनमें "हल्दीघाटी" १७ सर्गों में महाराणा प्रताप के शौर्य, पराक्रम, स्वातन्त्र्य प्रेम से सम्बन्धित वीर रस प्रधान उत्कृष्ट महा-काव्य है। हल्दीघाटी में जो युद्ध हुआ था, वह भारतीय स्वतन्त्र संग्राम की एक कड़ी है। महाराणा प्रताप का सम्पूर्ण जीवन मुगलों से युद्ध कर स्वतन्त्रता की रक्षा करते हुए व्यतीत हुआ था। उनकी वीरता, शौर्य और कष्ट सहिष्णुता अनुपम हैं। हल्दीघाटी की युद्ध भूमि आज भी उन वीरों के रक्त से भीगी हुई है। पाण्डेय जी ने महाराणा प्रताप के चरित्र, राजपूती दर्प तथा स्वतंत्र भावना का बड़ा उत्तम विशद और वेगवान वर्णन किया है। हल्दीघाटी को "भारतीय समरांङ्गण की तीर्थ भूमि" बना दिया है।

इस महाकाव्य में वीर और करुण रसों का उत्तम पारिपाक है भूख से तड़पते महाराणा के बच्चों, इधर उधर मारे-मारे फिरते हुए प्रताप, महारानी के कष्ट, प्रताप की मानसिक वेदना, हल्दीघाटी की लड़ाई आदि

में करुण रस की अभिव्यंजना अच्छी हुई है। युद्ध का वर्णन बड़ा चित्रोपम है। इस महाकाव्य का मुख्य रस वीर है पर कहीं-कहीं छायात्मक शैली के भी वर्णन है। वीभत्स रस भी है—

"हल्दीघाटी अवनि पर सड़ते थीं बिखरी लाशें।
होती थी घृणा घृणा को बदबू करती थी लाशें।"

प्रकृति वर्णन सरल स्पष्ट पर मर्म स्पर्शी है जैसे—

"जब से शशि को पहरे पा, दिनकर सोगया जगाकर।
कविता सी कौन छिपी है, यह ओढ़ रुपहली चादर॥

× × × ×

घूँघट पट खोल शशी से, हँसना है कुमुद किशोरी।
छवि देख देख बलि जाति, बेसुध अनिमेष चकोरी॥"

"हल्दीघाटी के लेखक ने महाराणा प्रताप की टीस वेदना और निर्भीक आत्मा की पुकार को अनुभव किया है और अनुपम शक्ति से प्रस्तुत महाकाव्य में उभारा है। यहाँ वर्णित ऐतिहासिक कथानक, चरित्र चित्रण, संलाप और छोटे-छोटे दृश्य कवि की जागरूक चेतना और कभी न बुझ सकने वाली अग्नि धधक रहे हैं, जो आज भी मानवीय प्रच्छन्न शक्तियों को उद्बुद्ध करते हैं।"*

---

## आर्यावर्त

'आर्यावर्त' पंडित मोहनलाल महतो वियोगी कृत अतुकान्त मुक्त छन्द में विरचित महाकाव्य है, जिसमें पराक्रमी पृथ्वीराज के चरित्र गौरव को विकसित किया गया है। प्राचीन इतिहास एवं जनता में प्रचलित भावनाओं की पृष्ठभूमि पर इस महाकाव्य में पृथ्वीराज के अपूर्व शौर्य, जयचन्द के षड्यन्त्र से पराजय, अन्त में उनकी आँखें फोड़ी जाने आदि की कहानी को अतुकान्त मुक्त छन्द में आबद्ध किया गया है।

---

* श्रीमती शचीरानी गुर्टू एम० ए० 'काव्य दर्शन' पृष्ठ ४७

'आर्यावर्त' एक राष्ट्रीय महाकाव्य है। 'वियोगी' जी में राष्ट्रीयता और स्वदेश प्रेम की पवित्र भावनाएँ कूट-कूट कर भरी हैं। आर्य भूमि किस भूल से गुलामी की बेड़ियों में जकड़ी गई इसका लज्जाजनक वर्णन कवि ने इसमें किया है।

"आर्य भूमि की वन्दना, आर्य जाति की महत्ता और आर्य आचरण के प्रतिनिष्ठा इस प्रबन्ध काव्य के प्रमुख स्वर हैं और इस दृष्टि से काल विशेष और व्यक्ति विशेष के चारों ओर घूमने वाली थोड़ी सी घटनाओं की सीमा में बन्दी होने पर भी इस महाकाव्य का नाम "आर्यवर्त" उपयुक्त ही हुआ है। राष्ट्रीयता की भावना इसमें बिखरे रूप में झलक उठी है और स्वदेश प्रेम पंक्तियों से फूटा-सा पड़ता है। रचना ओजपूर्ण है और प्रवाह अन्त तक बना रहता है।" +

मार्मिक भावपूर्ण स्थलों को पहिचानने की अद्भुत क्षमता वियोगी जी में है। वीररस के अनेक स्थल बड़े ओजपूर्ण हैं। महारानी संयोगिता के ये शब्द देखिये—

"देश द्रोहियों को अधिकार है न जीने का,
इनसे घिनाते हैं मरण भी इसलिए
अब तक घृणित शरीर यह आपका,
जीवित है, जीवित पिशाच तन खेद है।

प्रकृति के वर्णन करने में वियोगी जी को दक्षता प्राप्त है। प्रकृति के अनेक वर्णन "आर्यावर्त" में हैं। दो एक मार्मिक चित्र नमूने के देखिए—

"आया सान्ध्यी गन्ध वह, धूप से पकी हुई
घास की महक लेके......"

मनुष्यों के शब्द चित्र छोटे-छोटे पर सच्चे और सजीव हैं। दो चित्र देखिए—

"महाराज़ दिल्लीपति आए दरबार में
मूछें थीं चढ़ी हुई, कठोर मुख-मुद्रा थी
मानों लोह-निर्मित प्रचण्ड भुज दण्ड थे
साँड जैसे कन्धों, था शिला-सा वक्ष...... ...।"

.... .... ....

"वातायन और छज्जियों से उत्सुक है
देखती थीं नारियाँ उलट कर बुर्के,
मानों घटा दूर हुई, चाँद हँसे सैकड़ों।
एक दूसरी को थी दबोच कर झाँकती,
उन्नत उरोज जब-जब दब जाते थे,
गूँजती थी प्यारी ध्वनि मीठी सीत्कार की।

---

## नूरजहाँ

श्री गुरुभक्तसिंह "भक्त" कृत "नूरजहाँ" महाकाव्य जहाँगीर की इतिहास प्रसिद्ध प्रेमकथा के आधार पर लिखा हुआ शृङ्गार रस प्रधान महाकाव्य है। प्रणय घटना छोटी-सी है किन्तु लेखक ने कल्पना की पुट से उसे विकसित कर बड़े आकर्षक रूप में प्रस्तुत किया है। प्रेम के दृढ़ स्वरूप, मन की उथल-पुथल, आन्तरिक क्रान्ति, दिल की तड़पन और छटपटाहट का द्वन्द्वात्मक चित्रण इस महाकाव्य की कतिपय विशेषताएं हैं। मेहरुनिसाँ का चरित्र गहराई से अङ्कित किया गया है।

"नूरजहाँ के सजीव जीवन-नाटक को उतारने में लेखक उस भक्तसिंह जी को मानसिक कृतियों के सूक्ष्म-विश्लेषण और विचार प्रक्रिया के ऊहापोह भरे स्पष्ट चित्र अंकित करने पड़े हैं।"

इस महाकाव्य में प्रकृति की पृष्ठभूमि का प्रचुर प्रयोग किया गया है। प्रकृति का भाव अनुरंजित स्वरूप विशेष रूप से महत्त्व पूर्ण है। प्रकृति के अनेक मदमाते चित्र यत्र-तत्र जड़ दिये गए हैं। भाव व्यंजना बड़ी विशद और मार्मिक है। रस परिपाक उत्तम हुआ है।

काव्य की भाषा सरल, बोधगम्य और प्रवाहमयी है। तुक का ध्यान रखा गया है। वर्णन लम्बे और सांगोपांग हैं। जनसाधारण भी इस काव्य की भाव व्यंजना में निमज्जन कर आनन्द प्राप्त कर सकता है। सुन्दर प्रबंधकाव्य होते हुए भी यह महाकाव्य को कोटि में नहीं रखा जा सकता।